"एक तरह से विश्वसनीय समीक्षक को, तमकालीन अन्य लेखकों की अपेक्षा भी, अधिक व्यापक और उदार दृष्टिकोण होना चाहिए। अपनी संवेदना की सीमाओं के कारण अधिकांश लेखक एकांगी, एक तरह की समस्याओं के गौरव से युक्त रचनाएं प्रस्तुत करते हैं। लेकिन समीक्षक उस तरह की एकांगिता की जोड़ना नहीं ले सकता। इसके विपरीत हिंदी के साहित्यमात्र में स्थिति यह है कि लेखक और आलोचक दोनों सुगम और आधुनिकता जैसे आवरण नारों की आड़ में एक दूसरे से घर एकांतवादी होने की होड़ करते हैं।"

(—साहित्य समीक्षा और संस्कृतिकोश, पृ. 119-120)
डॉ. देवराज का आलोचनात्मक धरातल

इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि महान रचना के लिए आलोचनात्मक चेतना की आवश्यकता होती है और आलोचनात्मक चेतना के लिए सृजनशक्ति प्रमुख हो जाती है। परंतु यह बताते हैं अविभाजित है कि सृजनशक्ति के अभाव में आलोचना निर्भर रहती है।

साहित्य में कभी-कभी यह सच सुनाई देता है कि आलोचना दूसरी श्रेणी का साहित्य है और कुछ साहित्यकार तो ऐसे तिरस्कार की दृष्टि से भी देखते हैं। शैली, होम्प्लेक्स और तेकेल्स जैसे महान साहित्यकारों ने आलोचना को ऐसी दृष्टि से देखा है। किन्तु वास्तव में आलोचना भी एक सृजनात्मक क्रिया है। श्रेष्ठ आलोचना एक साथ ही सृजनात्मक रूप से व्यवहारिक है। मैथु आर्नर्स ने जहाँ साहित्य को जीवन की आलोचना की पदवी दी है वहाँ यह भी है कि साहित्य के लिए अविभाज्य गांधीय और आलोचना के लिए कैथेलिस्ट का आवश्यकता है। कविता जहाँ संस्कृतिविद्यात्मक है, वहाँ आलोचना विश्लेषणात्मक परंतु साहित्यकार के महत्त्व में विद्यमान संस्कृति को समक्ष बनी श्रेष्ठ आलोचना समय ही नहीं। इसलिए एक अच्छे आलोचक के लिए सृजनात्मक शक्ति का होना अविभाज्य है।

देवराज मानते हैं कि “लेखक दैवी दृष्टि अपने सृजन कर्म में विकासशील रहने के लिए चाहता है, समीक्षक लेखक का साही और कुछ हद तक तुलनात्मक विश्लेषण - सूचनांकन करने की योगिता पाने के लिए और पाठक अपने लिए रसायन की समझना को बढ़ाने के लिए।”

आलोचक दामोदरक, चाकोटक, मनोवैज्ञानिक, इतिहासकार आदि के साथ-साथ अत्यधिक भी होता है। आलोचना मान्यताओं को जन्म देने में अभिनवकुल उनका प्रयोग और प्रसिद्धि भी करती है।

समीक्षा का अर्थ है समय से देखना। किसी के गुणों और दोषों को देखना ही आलोचना है। हिन्दी साहित्य का अर्थ है आलोचना को परिभाषा और उद्देश्य के बारे में जोखिम नहीं दिखाया है कि "आलोचनाएँ निर-निर्मल व्यक्तियों के अनुपस्थिति में निर-निर्मल प्रकार की हो सकती हैं किन्तु मूलतः उसका उद्देश्य एक ही रहता है अर्थात् कवि कर्म का पलेक्षन दृष्टिकोण से मूल्यांकन कर उसी पाठकों के समुख प्रस्तुत करना और उनकी रचि परिशुध्द कर साहित्य का गलतिविधि निर्धारित करना।"

हिन्दी के अनेक आलोचकों ने निर-निर्मल प्रकार से साहित्य की आलोचनाएँ की है और अपनी-अपनी दृष्टि से मानन्कण भी बनाए हैं। यहाँ हमारा उद्देश्य आलोचना के इतिहास या विकास को देखना नहीं है अतः देवराज के आलोचक रूप को परखने के लिए उन्हीं की
देवराज मूलतः दार्शनिक हैं फिर भी वे सूचनात्मक प्रतिमा के धनी एवं एक सफल आलोचक भी रहे हैं। इन्होंने देवराज ने कुल मिलाकर सात आलोचनात्मक पुस्तकें लेख दी दर्जन संख्यातः पुस्तकें प्रकाशित की हैं। देवराज के आलोचनात्मक ग्रंथों का साहित्यिक परिचय प्राप्त करने के बाद ही देवराज के आलोचक रूप को साहित्य व्याख्या दिया जा सकेगा।

आलोचक के रुप में देवराज ने हिन्दी साहित्य में 'छायावाद का पतन' (सन् 1947) से पदार्पण किया। आलोचना के नए क्रम के शुरुआत देवराज के दृष्टि में जा सकती है जिन्होंने छायावाद की सीमाई पहचान दी हुई अपनी पुस्तक लिखी 'छायावाद का पतन। दूसरी ओर प्रगतिवाद का श्रमनीति अभिमुख प्रकृति उन्हें सच्चाई से नहीं हुई और आलोचना के लिए उन्होंने साहित्यिक मानदंडों की ही स्थिति मानी।

देवराज ने अपनी आलोचनात्मक कृतियों के द्वारा आधुनिक साहित्य जितना को विकसित करने का वरदान यज्ञ किया है। उन कृतियों को परखने का उपक्रम यहां प्रस्तुत है।

1. छायावाद का पतन :

देवराज का सर्वप्रथम विचारोत्सव प्रकाश है 'छायावाद का पतन' जो सन् 1947 में प्रकाशित हुआ। कवि,कथाकार और आलोचक देवराज ने कालक्रम में सबसे पहले आलोचक के रूप में ध्यान आकृत है। इसी निवेश के माध्यम से उनका हिन्दी साहित्य जगत में पदार्पण हुआ। इस कृति ने आलोचना जगत में खलबली सी मात्र दी।

सन् 1945 से पहले काव्य में खास तरह की विषय वर्तु (रहस्यस्वादी अनुभूति) की महत्ता के नाम पर छायावादी काव्य की जड़ें एक जो अतिरिक्त प्रशंसा की जा रही थी, वहाँ दूसरी ओर उनकी शिल्प संबंधी कमजोरियों की उपेक्षा भी हो रही थी। उस समय देवराज ने महसूस किया कि छायावाद के अधिकांश समीक्षक प्रकृत कथानक अनुभूति पर जोर न देकर और समीक्षक के निजी कार्य का निवाश न करते हुए, छायावाद के नाम पर आनुभूतित कवियों का अंदर उनके संवेदना से देख हमारा महत्त्व स्पष्ट करना चाहते थे। वही स्थिति देवराज को छायावाद समग्री ग्रंथ लिखने की प्रेरणा बन गई।

'प्राचीन साहित्य के रहते हुए हमें नए साहित्य की प्रकृति क्यों महसूस होती है?' इस प्रश्न को जवाब देने के लिए देवराज की दिशांक है 'रसवाद का पुराना विभाग जो स्वयंथी भाव की वर्णण या भोग और उसके आंतरिक साहित्य का प्रमुख लक्ष्य मानता है, एक प्रेम का कोई उत्तर नहीं दे सकता।... नये साहित्य को उस तरह की सहानुभूति दे सकने के लिए यह ज़रूर है कि हम साहित्य और उसके प्रशासन को सूची दृष्टि से देखें।'

देवराज के अनुसार कवि या लेखक अपने युग का शर्मिंदगी बाहर नहीं करता, वह उसकी समाःवादों का संकेत भी करता है। देवराज ने इस निवेश में उन स्थितियों का भी संकेत किया है जिनके द्वारा छायावाद की विरोधी और ग्रंथांशुलक आलोचना भी प्रभावित हुई है।

देवराज कविताओं को हैं। वे कविता साहित्य में विषयबद्ध का स्थान निर्दांत महत्वपूर्ण मानते हैं। साथ ही रूप के संगठनात्मक प्रत्यय के प्रति वे उदासीन नहीं हैं। अपनी मान्यताओं में देवराज कहीं की असहिष्नु नहीं है।
देवराज ने एक बात स्पष्ट की है कि हमारे आलोच्य सारे कवि - खासकर पंत और निर्मल - कालिदास से परिचित थे। फलतः वे त्रि-उनके भ्रेने कालिदास की वाणी में निरूपित काव्य प्रतियां को नकार नहीं सकते थे। कालिदास के काव्यों में एक और बीज़ है जो रूप-दृष्टि और छायावादी कविताओं दोनों में उपस्थित नहीं है - यानी परिपक्व नैतिक विवेक जो किसी जाति को स्थान रूप में धीमे के योग्य बनाता है।

सन् 1947 में प्रकाशित प्रेश का मूल नाम था 'छायावाद का पतन' उसके बाद सन् 1975 में करीब 28 सालों के बाद कुछ प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित किया गया जो 'छायावाद भाषण, पतन, पुनर्मुखाकन' के नाम से पुनः प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक का समर्थन हिंदी के अन्यतम प्रतिमाणी साहित्यकार डॉ. नामिरसार्ध को किया गया है, जिन्होंने सबसे पहले मलयालम के वाद-प्रदान देवराज का समीक्षात्मक किताब और लेखन विशेष परंपरा रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक पुस्तक में उन्होंने अपनी विचारी मान्यताओं को बदलने की कोई अनिवार्यता नहीं महसूस की। प्रस्तुत निबंध के निवेदन में देवराज का मानना है कि आलोचना का उद्देश्य साहित्य व्यवस्था नहीं है उद्धारण है। साहित्य का मानव संस्कृति और समय से घनिष्ट सम्बन्ध है, इस नाते को उल्लंघन सिखाने का, उसमें जीवन संबंधी मूल्य नामों जगाने का अभ्यास साधन है। अत: साम्राज्य के विचारकों द्वारा साहित्य उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

हिंदी में उद्धारन कोट्स का साहित्य उद्घाटन न होने का एक महत्वपूर्ण कारण देवराज उद्घाटन कोट्स की आलोचना की कमी को मानते हैं। उनका मानना है कि "अधिकांश आलोचक वाद-प्रदान हैं और वादों के कोंबलाल भरे वातावरण में, सच्चा को स्पष्टता से देखना-पुनर्देखना कठिन हो गया है।"

प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका और उपसंहार दोनों का स्वर छायावाद के प्रति प्रस्तावक है - यथार्थ समृद्धि पुस्तक का प्रसारित उद्देश्य छायावाद के पतन के कारणों का उद्घाटन है।

'छायावाद का प्रथम कमज़ोर उसका कल्पनाध्यक्ष है', इस बात को दृष्टा से देवराज स्वीकारते हुए लिखते हैं - "यह कल्पनाध्यक्ष एक नए और जाड़े पायलट और वास्तविकता के बीच में आकर्षण व्यवधान उपस्थित कर देता है, वहाँ इस बात का छोटा सा है कि "छायावादों की व्यक्ति की पकड़ अपूर्व और निराला सीमित है। वे न तो बादशाह वास्तविकता को पूर्ण विश्राम दे पाते हैं, न उपमुक न्यायरत्न को ही संक्रमण कर पाते हैं।" उपमुक मनोदशा के संदर्भ में उन्होंने पुस्तक की दिशायों में विस्तार से समझाया है।

छायावाद के स्वरूप के साथ-साथ छायावाद के इतिहास पर संक्षिप्त दृष्टि उल्लेख देते हुए देवराज ने छायावाद की दुर्बलताओं को अनेक शीर्षकों में बौद्धिक वर्णित किया है। ये दुर्बलताओं भी निम्न प्रकार हैं:

...
1. शब्द-मोह, विचर-मोह, कल्पना-मोह
2. क्रेन्द्रोपगामी व्याख्या प्रवृत्ति
3. असामन्जस्य- विद्वारण और रागालक
4. वास्तविकता पर बताकर, "मृत्यु" की कविता
5. लोक संवेदना का तिरस्कार

प्रसुल्ट पुस्तक के उपसंहार में छायावाद के मुख्य आधार स्तंभ पंि, प्रसाद, निराला और महादेवी की कृतियों की चर्चा के साथ छायावाद के एकांकी विकास पर दृष्टि धारी गई है। डॉ. नगमुर के कथन "प्रगतिवाद छायावाद की भूमि से नहीं पैदा हुआ, बल्कि उसके घीरन का गला घोंट कर ही उठ उठा हुआ है" - से देवराज असहमत होते है। उनके विचार में छायावाद को गीतन्त्रज का अवसर ही नहीं भिला।

देवराज आलोचना का एक गंभीर उद्देश्य मानते हैं ‘रस संवेदना का शिक्षण और परिवर्तन’। इस प्रकार में असहमति भी आलोचना का पुनरुत्थान है। उद्देश्यके लिए कामयानी की दृष्टि करते हुए देवराज कहते हैं “मानव संवेदना की विकृति के रूप में कामयानी हमारी समझ में एक नियंत्रण असकता प्रदर्शन है। प्रसाद की सौमन्तिक कायसंवेदना वस्तुतः यथार्थ के आकलन और तत्काल दौड़ विदेश के प्रतिपादन के लिए उपयुक्त अस्त्र नहीं है।” यहाँ वे गुरुकुल में कामयानी के संदर्भ में विचारों से बलगन निर्णय दे रहे हैं।

इस प्रकार, एक समीक्षक के रूप में देवराज अपना स्वयं महत्वपूर्ण बनानेमें सकल रहे हैं तभी तो डॉ. फरमानद की विचार से सहमत होना ही पड़ता है कि "हिन्दी में ऐसे आलोचक अधिक नहीं हैं जो गहरे इतिहास बोध, सांस्कृतिक अर्थगति, जीवन दृष्टि और रचनात्मक दृष्टि से एक साथ उसी अर्थ में संभव हों जैसे देवराज।” वास्तव में देवराज एक तत्कालिन विद्वानी आलोचक हैं।

डॉ. कुमार शिमल के अनुसार, “आलोचक के रूप में इनके अपूर्वकायी महत्व का एक अतिरिक्त कारण है कि इनमें संरचनात्मक प्रतिभा के साथ ही सांस्कृतिक और दार्शनिक प्रवृत्तिशीलता है। यह आयाम नहीं है कि उनकी रचनाओं का विभागित वर्ण और सवारिस्तम्भ ही है। किंतु, ये अपनी गानवालाओं, गद्दीकाथा और विदेशों का उपभोग इतनी साफ़ती तथा तर्क पुष्टि के साथ करते हैं कि उनके प्रभाव से बच पाना कठिन हो जाता है।”

निष्कर्ष: यह कहा जा सकता है कि इस निष्कर्ष का प्रधान उद्देश्य छायावाद के पतन के कारणों का उद्धारण या निरंतर करना है। निष्कर्ष के शीर्षक से ही यह प्रकट है कि देवराज छायावाद के पतन को एक तथ्य या वास्तविकता मानते हैं। प्रगतिवादी आलोचकों ने भी छायावाद पर आक्षेप किया है कि वह पलायनवादी है। छायावाद का काव्य ने साध्व पाठकों में प्रतिकृत प्रतिकृतियों जगाई है और 'प्रगतिवादी आलोचक अध्युनिक हिन्दी कविता का उद्धत पथ प्रदर्शन नहीं कर पाएं' ऐसा देवराज का विचार है।
2. साहित्य चिन्ता:

यह डॉ. देवराज का सन् 1950 में प्रकाशित निबंध संग्रह है जिसमें सन् 1944 से 1950 तक समस्या-समय पर लिखे हुए सत्रह निबंध संग्रहित हैं। इन निबंधों में यहां शाहीन के स्वरूप, प्रयोग, प्राकृतिक आदि के संबंध में विवेचन मिलता है और कुछ साहित्यिक कृतियों को संदर्शित व्यावहारिक आलोचनाएँ भी मिलती हैं। "संग्रह के इन निबंधों में अधिकांश का ज्यादा साहित्यिक मूल्यांकन के मानों को स्थिर करना है।"

प्रत्युत्संग्रह की भूमिका में साहित्य के स्वरूप के संबंध में स्वदेशीकरण किया गया है।

इनमें कुछ महत्वपूर्ण निबंध - साहित्य का मानवता, कलागत सींडर्ड और महत्व, सूचना और साहित्य, कल्पना और वास्तवता, साहित्य और संस्कृति आदि में साहित्य की उल्लेखनीय विशेषताओं का विवेचन किया गया है।

सबसे पहले, देवराज ने साहित्य में बोधतत्व को प्रमाणित किया है। उनके अनुसार बोधतत्व से ही साहित्य का रहा तत्त्व लक्षित या निरूपित होता है। दो युगों अथवा कलाकारों के साहित्य में निर्मला बोध तत्त्व के निरलोपन से आती है।

अग्रदौ उनके निबंधों में देवराज ने साहित्य-काव्य के विविध विषयों की चर्चा भी की है। उनके अनुसार साहित्य का विषय संपूर्ण मानव जीवन है। प्राकृतिक कलाकार जीवन को उसकी समग्रता में देखते हैं और जीवन के प्रत्येक पहलु का अन्य पहलुओं की सापेक्षता में उद्भासित करता है। मानव जीवन के चार अंग हैं - जीव प्रकृति, मनोवैज्ञानिक प्रकृति, नैराजिक समाजक व्यापार और दार्शनिक सांस्कृतिक पूर्ववर्ती यथा (Religious) भावनाएँ। देवराज के अनुसार, इन चारों की विविधता से संग्रह का तत्त्व आवश्यक प्रदान करने वाला कलाकार क्षेत्र होता है - "अनुभव श्रेणी का सामान्य उच्चतम कोटि का कलाकार मेरी दृष्टि में यह है जो जैव-मनोवैज्ञानिक प्रकृति की विविधता के साथ-साथ अपने समाज की जटिल वास्तविकताओं का उद्धारन करने की क्षमता रखता है।"

उन्होंने प्राकृति देवराज साहित्यिक दृष्टि से मनुष्य का व्यक्तित्व, मनुष्य का सुख-दुख, मनुष्य का हर-शोक और मनुष्य के नामांकन का महत्वपूर्ण मानते हैं। एक साहित्यकार को सामाजिक नैराजिक व्यवस्था के प्रति अभिव्यक्ति दिखाना उसका आवश्यक मानते हैं और स्वयं भी सामाजिक व्यवस्था के अंकन को, जटिल व्यवस्था के अंकन को महत्व देते हैं। उन्होंने नैराजिक समाज के नीति व्यवस्था को चेतावनी दी कि दार्शनिक चेतना और दार्शनिक चेतना उनके अनुसार इन तीन पहलुओं की विविधता से साहित्य की संस्कृति को परखा जाना चाहिए।

काव्य साहित्य में अलंकारों का प्रयोग प्राचीन काल से होता आया है। अलंकारों के प्रयोग के बारे में वे साहित्य के मूल्यांकन का एक स्पष्ट मानवता प्रस्तुत करते हैं। सर्जक विश्व की संख्या को संबंधित करके प्रस्तुत करता है और पात्रक भी काव्य में उन चरित्रों को संबंधित करके देखना चाहते है। सर्जक चरित्रों की अनुमूलत को ही शब्दों द्वारा मूल्य नहीं करता है। वह यथा के नियमों से निर्दिष्ट नवनिर्माण भी करता है। इन दोनों प्रकार के प्रयासों में वह उम्मीद आदि अलंकारों प्रयोग भी करता है, पर वह विश्व तत्त्व को बलपूर्वक सत्य घोषित
करने की छूट नहीं होती। यह सब बुद्धि को चमकाता कर सकता है किन्तु काफी को उच्च क्षेत्र नहीं कर सकता। इसी मानदंड पर देवराज सुरू, तुलसीदास, कलिदास को उच्च क्षेत्र के कलाकारों में गिनते हैं।

'कलामगत सौंदर्य और महत्ता' शीर्षक निबंध को देवराज ने दो भागों में लिखा है -

इनमें देवराज ने साहित्य के मूल्यांकन में शैली-सौंदर्य के मानदंड पर विचार किया है और स्वयं रूप से अपने निर्णयों का प्रस्तुत किया है जो ‘आदर्शपर विचारमयों के विषय में’ जाते हैं। श्रेष्ठ साहित्य के मानदंडों में देवराज ने अनुभुति की यादकारा, गहनता और नवीनता को माना है। सौंदर्य और महत्ता को कला की दो बिना विशेषताओं और कलाकारों मानने वाले एलेक्सेडर के मत को नकारते हुए देवराज लिखते हैं -

"कृति विशेष के उत्कृष्ट को हम महत्ता और सौंदर्य में विशेषतात्मक कारण के प्रमुख के संबंध में आपके समान है कि चूँकि मूल अनुभुति तक हमारी पहुँच नहीं होती, इतना ही ध्यान में रखना चाहिए कि अनुभुति और चंदना में विश-प्रतिविश भाव रहता है। आप इस बात की ओर भी ध्यान दिलाते हैं कि अनुभुति के अभाव में कवि केवल पथ पुर्तिः की आवश्यकता दर्शाता है और अच्छी शब्दों का उपयोग करता है कि श्रेष्ठ काव्य का लक्ष नहीं है।"11

देवराज श्रेष्ठ काव्य के सूची में दो आवश्यक गुण-निवासन और संयम की चर्चा करते हैं। उनका कहना है कि "काव्य साहित्य के आलोचना में शैली अर्थात भाषा और अभिव्यक्ति में संबंधी विशेषताओं का गुणमान नहीं होना चाहिए।" वास्तव में शैली को लेकर यादाही देना विशेषता उच्च साहित्य के संबंध में, आलोचनात्मक संबंध का सूचक है।"12 इस बात पर भी बल देते हैं पूर्ववर्ती श्रेष्ठ कृतियों को कलात्मक श्रेष्ठता का मापक मानना चाहिए।

देवराज आंतरराष्ट्रीयता के प्रमुख संबंधक सही रहे हैं। उनके अनुसार - "बसते हुए आंतरराष्ट्रीयता के बुद्धि में साहित्य में भी राष्ट्रीयता के अभाव नहीं दिखा जाना चाहिए। अपने साहित्य का उद्धवत गर्व होना बुद्धि नहीं है, और इसका अर्थ अन्य देशीय कलाकारों के प्रति उदारता होना अथवा उनकी उच्चता करना नहीं है। वस्तुतः साहित्यिक क्षेत्र में आंतरराष्ट्रीयता की मानना उत्कृष्ट के अभेद वीरता बुद्धि की अधिक घोटाल है।'13 वे उनके आलोचना के व्यक्तित्व प्रकृतियों का परिचयक है।

मानन्त्व का प्रथा लेने वाले देवराज संस्कृति के उन सभी तरीकों को साहित्यिक मूल्यांकन के महत्वपूर्ण बदलते हैं जो मानन्त्व के लिए सत्य को सिद्ध होते हैं। जों. नगरण चक्रान के अनुसार "युग जीवन के जिल्ले यथार्थ पर आधारित तीव्र, गहरी, व्याख्या और नवीन अनुभुति को जों. देवराज साहित्यिक मूल्यांकन के महत्वपूर्ण कसाइटी मानते हैं। यह नया नतुसार जीवन के मर्म छवियों का माहौल संगठन सुविधाओं का महत्वपूर्ण विचारक तत्त्व है। विद्वानों पर आधारित काव्य भी महत्व ग्रहण कर सकता है जब विद्वानों का उपयोग मनोरंजन प्रयोग सिद्धि के लिए प्रकृत रूप में किया जाएगा।"14

3. आधुनिक समीक्षा: कुछ समस्याएँ

'साहित्य विधा' के प्रकाशन के पश्चात तीन वर्षों में लिखे हुए निबंधों का संकलन देवराज ने सन 1954 में प्रकाशित किया जिसका शीर्षक है - आधुनिक समीक्षा। इसमें भी मुख्यतः आधुनिक निबंध ही संकलित हैं। इसमें कुल 17 निबंध हैं। इसका उद्देश्य
साहित्य तथा आलोचना सम्बन्धी कलिय चर्चा राजनीतिक मायनों को बनाए जा रहे हैं। आपने इन्हें कैसे अनुभव किया है?

देवराज महान्तस रहते हैं कि साहित्य से सम्बन्धित सामाजिक समस्याएं अनेक हैं। हमें यह देखना चाहिए कि आज हमारे देशवासी इस तरह भी नहीं रह गए कि अपनी समृद्धि सांस्कृतिक धरोहर का किरदार मूल्यांकन एवं उपयोग करें, उसमें दृढ़ता करने का प्रयास करते हैं और भी कठिन है। देवराज कहते हैं, "केवल साहित्य-समाज के ही नहीं, ज्ञान-ज्ञान के प्रायः प्राप्त क्षेत्र में हमारे देश की बढ़ोत्तर बनाए जा रहे हैं अर्थात् सूचनात्मक वित्तनशीलता का आगाम।"

फिर भी देवराज निष्क्रिय कहते हैं कि मनुष्य जाति एवं विश्व राष्ट्र अपने इतिहास का स्वयं निर्माण करते और कर सकते हैं। हमारे भारतीय भी जवाब देने देश की सोईं हुई सूचना-चेतना को जगा सकते हैं।

प्रस्तुत जिस्में संग्रह का केंद्रफूट विश्व साहित्य समीक्षा है। देवराज की समीक्षा सम्बन्धी मायनों का समग्र रूप इसके निर्माण में प्राप्त होता है। "हिन्दी साहित्य: एक वृद्धि" शीर्षक निर्माण में हिंदी साहित्य की समीक्षा के इतिहास पर वृद्धि दालते हुए देवराज ने उसे बहुत छोटा बताते हैं। आधार रामचंद्र शुक्ल देवराज के परंपरागती साहित्य ज्ञान पढ़ते हैं, तो प्रमाणित की आलोचना साहित्य की समाजशास्त्रीय समीक्षा और परिषद के हामी नज़र आते हैं। देवराज प्रगतिशीली समीक्षा को आदर्शवादी समीक्षा कहते हैं।

आलोचक का काम क्या है? इस प्रकार के उत्तर में देवराज समीक्षामें दूसरे योगदान आयोग करते हैं - एक आलोचक कृति के कलात्मक सौदागरी अथवा उसकी प्राकृतिक तत्त्व के परिवर्तन की योगदान, पूर्ववर्ती, कृति में निचले अनुभूति के संग-समाप्त मूल्य या महत्व को परखने की क्षमता।

'समाजशास्त्रीय आलोचना' शीर्षक निर्माण में देवराज ने उसके दो लाम विचारये हैं। उन्होंने निर्देश में उन्हें बताया है, "कलाकृतियों का रस हम एकता में बुकर करते हैं, उन्हें हम मुख्यतः आन्दोलन के साथ पढ़ते हैं। किन्तु जब आलोचक उनका रंग युग जीवन से जोड़ता है तो हमें प्रशंसनीति के साथ यह चेतनाएं भी होती हैं कि उन कृतियों का ऐतिहासिक रंग रंग पर होने वाले विविध सहजताओं से संबंध है। ....... आज हमें जान पढ़ता है कि हम समाजशास्त्रीय वृद्धि के बिना साहित्य के पूरे महत्व को इस्तेमाल नहीं कर सकते।"

देवराज मानते हैं कि 'विश्वविद्या का परिचय साहित्यकार और समीक्षक दोनों के लिए आवश्यक है। इसे यह सबसे अधिक आमंत्रित बसन गायत्र है। साहित्य को हम व्यवस्था पढ़ते हैं - इसके उत्तर में उसे कहते हैं - "यह आज भी हमारे जीवन-समाज को वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक बनाने की दायित्व स्वीकार वृद्धि है। यह आज भी राजनीति की अर्थव्यवस्था छोटियों में हमारे चेतना का प्रसार करता हुआ हमारे व्यक्तित्व को अधिक सम्बल, शराम्य और सूचनाशील बनाता है।"

कानपुर की एक कॉलेज में देवराज के मौलिक भाषण का एक लिखित अनुवाद 'होनहार लेखकों से' शीर्षक से इस संग्रह में छपा है जिसमें देवराज ने इस बात पर जोर दिया है कि साहित्यकार, सामाजिक के लिए सबसे अधिक अपेक्षित वस्तु है - महापुरुषों अभ्यास
महान लेखकों की कृतियों का प्रयोग परिचालित। वे यहाँ भी समझ करते हैं कि "कलाकृतिया को प्राप्त करने का अर्थ हाथों को अस्तित्व में आना है, न उसका यही अर्थ है कि आप विशेषतः अथवा काश्मीरी न बने।"19 देवराज का व्यापक दृष्टिकोण उनकी निम्नलिखित सत्यता में इशारा है - हिंदी के नवयुग के लेखकों को न वेदांत हिंदी वास्तविक का कहा परिचय होना चाहिए। अप्रतिम संस्कृति, साहित्य की महान संरचनाओं की। तभी ये विशाल भारतीय संस्कृति का सम्मान अपने प्राप्त कर सकेंगे। आज के इस्तेमाल एवं प्रयोग के लिए यह भी बहुत उपयोगी है कि वे समस्त युरोपीय साहित्य का अध्ययन चर्चा करें।

इसी समय में दो निबंध तुलसी से सम्बन्धित हैं। एक में समकालीन नाटक का उपयोग केवल समाजों के आधार पर किया गया है। 'तुलसी और भारतीय संस्कृति' निबंध में भी देवराज ने यह बताने की कोशिश की है कि वस्तुतः हिंदी के व्यवस्था और काव्य में पौराणिक धर्म-मानवी का प्रभाव होते हुए भी संस्कृत जीवनकाल बदल दिया जाता है। साथ ही हम पर संस्कृत काव्य की परंपरा एवं उससे प्रभावित संस्कृत का भी प्रभाव है।20

देवराज के अनुसार संस्कृत साहित्य का स्थान बिश्व में गिने-चुने विकसित और साहित्य के साथ है। संस्कृत साहित्य की तुलना में हिंदी साहित्य को भी परखा है और हमें निफर्तता नहीं है - "हिंदी साहित्य में - जिसके प्रतिनिधि कवि विद्यामृत, जायसी, सूर, तुलसी और विद्वानः - अविश्वसनीय प्रांत होता है किसी जीवन संदर्भ की पररूप एवं परिपक्वता नहीं है। हिंदी के साहित्याकरों के अपने सहरे इतिहास में मौजूद काव्यशास्त्र का सूचना नहीं किया, उनकी नीति तथा जीवन-विवेक भी जीवन-विवेक साहित्य से प्रभावित किया गया है।"21

देवराज के समय दर्शन में उस संस्कृति को बच्चों का भी विशेष महत्त्व है जिसे उन्होंने एक प्रतिनिधि के रूप में स्थापित किया है। कुछ निबंधों में प्रान्तार्थक काव्य तथा मार्क्सवादी विचार-धारा पर भी उन्होंने अपने विचार प्रतिपादित किए हैं। देवराज के द्वारा समाजवादी धवन में संस्कृति कुछ अशृध्वंस है। मार्क्सवादी समाजवादी विचार-धारा से प्रेरित और प्रभावित है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण के विश्व देवराज ने दो अभिव्यक्तियों प्रस्तुत की हैं। एक तो यह कि मार्क्सवाद यह युग देता है किसी अनेक एवं कल्याणीय प्राणिय नहीं। वह केवल वर्तमान में ही नहीं होता। उसका जीवन अर्थतः सन्दर्भों एवं भविष्य की कल्याणां से समुद्र तथा सरस चर्चा है।22

मार्क्सवादी समाजवादी धारा की दुर्दशा कहीं यह है कि यह साहित्यिक विषय वस्तु के सामाजिक या साहित्यिक प्राप्ति के कुछ अभिव्यक्ति देता है। देवराज के अनुसार साहित्य का कविता के कवि सामाजिक जीवन नहीं, उसका एक महत्वपूर्ण विषय मनुष्यों के जीवन में समस्ति है जो उनकी मूल प्रमुखताओं से सहचरित है। जैसे भी उन्होंने और बालक का सम्बन्ध तथा ग्रंथि और ग्रंथि का सम्बन्ध।

'हिंदी उपन्यास की कुछ समस्याएं' में देवराज ने यह नत प्रस्तुत किया है कि हिंदी का जीवन समाज में आलौची क्रिया को उद्धार किया पाया के संपर्क में विकसित संवेदना की कमी और बालक का सम्बन्ध अहंकार और आलोचना के अनुसार किया गया है।
अतिम निवेश 'दो उपन्यास' के अंतर्गत देवराज ने अनेक के 'नन्दी के ढीप' और हजराप्रसाद ज्योति दी के 'बाणमंडल की आत्मकथा' उपन्यास की समीक्षा की है। दोनों ही उपन्यासों की विशेषताओं और कमियों की ओर देवराज ने संकेत किये हैं फिर भी कुल मिलाकर 'नन्दी के ढीप' उन्हें एक आत्मसार उपन्यास लगा है। उसी तरह 'बाणमंडल की आत्मकथा' का देखरेख देवराज के मन में यह प्रश्न उठता है कि 'क्यों द्वितीय श्री ने अपनी रचनात्मक प्रतिमा का और प्रभाव समुदाय नहीं किया? क्यों वे अपना अभिकार दस्य रखकर विरोध-करार को ही देते रहे हैं?28

देवराज आत्म संस्कृति हिंदी साहित्य में अभिकल्पक की कमी से विविधता दिखाया है। प्राचीन साहित्यशास्त्र की उपयोगिता पर देवराज रचना निरस्त विचार करते रहे हैं। संस्कृत साहित्य और साहित्य शास्त्र के प्रति उनका आदर गंभीर विश्वास पर आत्मसात है। यही कारण है कि देवराज द्वारा साधनालिक 'गृहसाधन' पत्रिका में यदा-यदा ऐसे विषयों से संबंधित उनके लेख भी प्राप्त होते रहते हैं। कुल मिलाकर 'साहित्य चित्र' के बाद बैद्योपिकता आत्मचन्द्रा संबंधी यह निवेदन संस्कृत 'आत्मसाति' ने एक महत्वपूर्ण संग्रह सिद्ध हुआ है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

4. साहित्य और संस्कृति:

जैसा कि व्हा. देवराज का बचा संसार - एक परियोजना में पत्रिका संपादन में 'गुरु-चेतना' पत्रिका का जिक्र किया गया है। गुरु चेतना में सन् 1952 से 1956 तक व्हा. देवराज ने संपादकीय लेख लिखे। देवराज के मिलों की यह राय थी कि 'गुरु-चेतना' के विशेषता संपादकीय पुनर्विषयक रूप में संस्थान कर दिए जाएं। तथा 'संस्कृति का दास्तान विवेचन' लिखने के मिलों में भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में देवराज द्वारा जो कुछ संहिता गया वह रहा इस संघड में संकलित किया गया है तथा कुछ निवेदन इसमें रहित वर्तनाल अथवा नामशेष के भी डाल दिए गए हैं। इसका प्रकाशन सन् 1958 में किया गया है। श्रीरम के अनुसार दूसरे दो भाग किया गया है। पुरात्ती 14 लेख और उपराइर में संस्कृति संबंधी 11 लेख संकलित है। कुल 25 लेख हैं।

'हिंदी आलोचना' निवेश में देवराज ने समीक्षा के नीच मुख्य अंग 'भाषा' दिखाया है। विशेषता, त्योहार और मुद्दामण। हिंदी आलोचना को दो भागों में बीमारा गाया है। पूर्व सुलभ काल और पूर्व सुलभ काल। 'छायावादी कवियों' के बारे में देवराज ने लिखा है कि "छायावादी कवियों में इतनी तैलिक क्षमता नहीं थी कि बिना किसी महत्वपूर्ण जीवन दर्शन का निर्माण कर सके।"29 छायावाद-चुंग के कविताओं समीक्षा के पर देवराज ने फ्राइड के राष्ट्रीयतावाद जीवन का भाग नहीं है, इसलिए ही तब छायावाद या अन्य आलोचना नहीं की।

प्रायोगिकी दृष्टिकोण के विशेष लेख छायावाद प्रतिवादी समीक्षा में हुई। इस समीक्षा में छायावादी सौदीवाद अथवा अतुरुपयोगीवाद का भी विरोध किया। देवराज का यह भी मानना है कि प्रतिवाद ने हिंदी समीक्षा का वर्तमान रूप में प्रभावित किया। समीक्षा सूचनात्मक साहित्य की अनुपस्थित अथवा गृहीता निदर्शियों नहीं है, उसका स्वर्ण अतिरिक्त है। इस तथ्य के अनुसार आलोचना में देवराज के अनेक विचारों का समावेश इस निवेश में किया गया है।
साहित्य की परिभाषा प्रस्तुत करने का प्रयत्न डॉ. देवराज ने नहीं किया है। उन्होंने अपने साहित्य को भी अपने प्रमोक्षन सम्बन्धी सिद्धांतों के अनुसार ही जीवन से जोड़ा है।

देवराज ने जीवन और साहित्य के सम्बन्ध में एक अनुभव तथा स्थायित्व करने की चेतना की है -

"साहित्य जीवन से प्रेरित लेता है। साहित्य अंतिम विश्लेषण में प्राकृतिक जीवन-संपन्न की अभिव्यक्ति होता है।" 27

'असिस्तवाद' शीर्षक निबंध में असिस्तवाद का सामान्य परिचय देते हुए देवराज कहते हैं, "असिस्तवाद व्यक्तिगत जीवन या असिस्तव का दर्शन है। असिस्तवादी व्यक्ति की स्वतंत्रता में आरोपों बदलते हैं और चाहते हैं कि व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता एवं जीवन-संपन्नी के मृत्यु जागतिक बनाया जाय।" 28 इसके बाद कुछ असिस्तवादी विचारकों के मतभेद का अलग-अलग वर्णन किया गया है।

असिस्तवाद की आलोचना करते हुए देवराज लिखते हैं "असिस्तवाद जोहान लेकर नमूना यूनानी और उसके व्यक्ति के निर्णयक पर गीतक देता है, उसमें तक कहां रहता है। लेकिन इसके आगे बढ़कर उसका यह कहना कि मानव-प्रकृति की कोई चीज़ नहीं है, अतिरिक्त है।" 29

साहित्यिक हिंदी साहित्य को लेकर गतिरोध की बच्चे करते हुए तीन निबंधों के नियोक्त से में देवराज के विचार कुछ इस प्रकार हैं। "मानना चाहिए कि किसी भी जीवन-साहित्य के लिए पुराने समीक्षकों के आत्मक के कम होने की यह स्थिति गतिरोध की स्थिति है।" 30 आगे देवराज के अनुसार सुप्रीमो देश की तुलना में हमने यह यह जीवन का बहुत अभाव है यह है - वैश्विक जागरूकता का अभाव, विश्वास का अभाव या कभी, जीवन के विविध क्षेत्रों से संबंध अर्थव्यवस्था देखना की जरूरत।" 31

देवराज ने साहित्यकार के चिंतक रूप के बारे में बहुत आक्रमणिक लिखा है -

"साहित्य जीवन समाज का दिशा निर्देशक है और यह तब तक संपन्न नहीं है, जहाँ तक कि यह चिंतक रूप में अपनी योग्यता सिद्ध न कर ले।" 32

देवराज आलोचना के क्षेत्र में भी गतिरोध का उल्लेख करते हैं। लेखकों के जीवन में आए गतिरोध के बारे में देवराज ने बहुत रोचक कहा है, "क्योंकि उन लेखकों ने आपना जीवन प्रामाण्यालय दृष्टियों व व्यक्तियों की मदद से शुरू किया, जिसके कारण वे सही और आयु की की या सारे। यह नहीं कि उनमें प्रतिमा नहीं थी, यह भी नहीं कि वे सही की की व्यवहार नहीं थे। किन्तु शायद, वे लेखक और उनके प्रशंसक दो चीज़ों में भेद न कर सकें - प्रारम्भिक प्रस्तावना और स्वायत्ती मूल्यांकन।" 33

साहित्य और जीवन दर्शन के बारे में देवराज नामांकों के साहित्यी विकास को मानव-जीवन तथा भूमिका के प्रति खुलकर, विश्व एवं मृत्यु मस्तुङ्ग दंग से, प्रतिक्रिया करने में सहायक होता है। जीवन दृष्टि से समाज कलाकार ही जीवन की समाज को अपनी चचा में समझ सकता है। किन्तु ऐसा यह तभी सकता है जब उसको उस जीवन दृष्टि को स्वयं अपनी चिंतन साधना के आधार किया हो।" 34
देशराज ने जीवन के कुछ पहलों के दिनों को साहित्य की श्रेष्ठता के लिए अनिवार्य माना है। उनके अनुसार जीवन के कुछ महत्वपूर्ण समय थे - "पाप और पुण्य की समस्या, आशा और ग़म वा समस्या, इतिहास तथा मानव-जीवन की दिशा और लक्ष्य का प्रमाण इत्यादि।" 935

आलोचक झुलक के उत्तरार्ध में अधिकतर संस्कृति को महत्त्व दिया गया है। देशराज में संस्कृति बोध अधिक पर्यावरण जाता है। अतः उन्होंने संस्कृति से सम्बन्ध कुल 11 निवेदन छोड़े प्रस्तुत किए हैं। कुछ निवेदनों में भारतीय संस्कृति के अनुसार वे अपने संदेश कहने का प्रयास किया है और कुछ निवेदनों में हमारी भारतीय संस्कृति की चर्चा, कालिदास का योगदान, सांस्कृतिक समस्याओं आदि विषयों पर प्रयास जा रहा है।

"श्रेष्ठ विचारक और लेखक जीवन के सफल दुर्घट तथा विशेष अवधि होते हैं, विशेष तथा कम। ये जीवन के सफल चित्रण द्वारा ही अपने पाठकों की स्वीकृति को प्रख्यात करते हैं।" 936 इन निवेदनों में देशराज ने विदेश का महत्व न्यून ठहराया है। इसी निवेदन में उन्होंने लिखा है - "श्रेष्ठतम साहित्य, फिर भी विनिमय को अवधा रागानाम, आदश्यक रूप में अभिन्नता या विद्रोह का समर्थन नहीं होता।" 937 यहाँ उन्होंने विद्रोह का न समर्थन कर रहे हैं, न विरोध अर्थात् साहित्य की श्रेष्ठता का अनिवार्य समन्वय विद्रोह से नहीं है।

'मानवता के लिए' निवेदन में लखनऊ 'ऑल इन्डिया रिडियो' पर प्रस्तुत देशराज के वार्तालाप को प्रस्तुत किया गया है। देशराज की मानववादी चूटक का पूर्व अध्ययन में विस्तार से देखा गया है।

अंतिम निवेदन 'चूटक और पश्चिम' में उन्होंने अपने विचार कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं - "वर्तमान समय की संस्कृति जहाँ इस समय के भारत से विशेष जन्म है, वहीं वह प्राचीन समुद्र भारत की संस्कृति के कांडों अधिक निकट है। यह समानता बाद़ आवेदन का या परिवेश की नहीं, आत्मिक स्थिरता या अन्तर्वेदना और मनोवृत्ति की है।" 938 इस प्रकार 'चूटक-चेतना' पत्रिका के संपादक लेखक के संकलन को देख कर 'चूटक-चेतना' पत्रिका की साहित्यिक मूल्यवानता को आंका जा सकता है।

5. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन - सुन्दरावल नामवादवाद की भूमिका :

'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन' सन 1972 में प्रकाशित देशराज का एक उच्चतर अवधारणात्मक उपक्रम है। साहित्य के अनुसार दर्शन के क्षेत्र में देशराज ने अनेक प्रथा प्रकाशित किये हैं। दर्शन में उनकी प्रमुख रचना, उनका पी-एच.डी. की शोध-अभ्यास के आधार पर लिखी हुई अंग्रेजी पुस्तक 'शिक्षा का ज्ञान-शास्त्रीय सिद्धांत' है। देशराज ने, अपना दार्शनिक ध्यान शिक्षा के अंतर्गत दिशा के अध्ययन से प्रारंभ किया। पर ऐतरीयों के नींव पात्रता दर्शन के प्रभाव से अध्ययन दर्शन से दूर हटने लगे। पर विचारों की परिवर्तनता उन्हें ज्ञान शास्त्री प्रमुख तथा मीनांतर में पारदर्श्य तत्काल-प्रूफ़ल भावनाओं और पूर्वाधारों में निःशरीरियाँ और सुखदायियाँ के अवशेषों से दूर ले गई। ऐसी अवस्था में वे मानववाद (Humanism) की ओर आकर्षित हुए और साथ ही साथ, एक निमित्तशील दार्शनिक होने के कारण उन्होंने प्रायः सामसंग मानववीं विधायाओं और कलाओं - धर्म, शिक्षा, राजनीति आदि - का
गंगौर अथवा देवराज के 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन' (सूर्यालंक मानवतावाद) पर अपना विचार का प्रमुख इंतज़ाम किया। यह प्रमुख उनके दोनों परिवारों, अमरीकी ओर के एक लेखक ने मानव उपयोग और दलित इंद्राजी को बहुत पसंद हो आया।

प्रस्तुत पुस्तक में एक नयी जीवन दर्शन की समस्या देखने का प्रयास किया गया है। इसी जीवन दर्शन को सूर्यालंक मानवतावाद की संंज्ञा दी गई है और उसके प्रकाश से मानवीय अनुभव के दृष्टि में महत्वपूर्ण क्षेत्रों का स्वरूप समझने की कोशिश की गई है।

देवराज के अनुसार हमारे गुण की ज्ञात है या समस्याएं अनंत और अनिश्चित हैं। हमारी सबसे बड़ी ज्ञात है - जीवन मूल्यों के कार्यान्वयन दृष्टिकोण। आज के मनुष्य के मन में यह धारणा थीरे-थीरे है कि हमारे नैतिक तथा दृष्टिकोण मूल्य अभिव्यक्ति में सापेक्ष होते हैं। प्रस्तुत पुस्तक का एक प्रयोग है मूल्यों संबंधी हमारी संबंधित मनोव्यक्ति का निराशा करना। इसका दृष्टि प्रयोग है मूल्य की उन क्रियाओं की, जिनके द्वारा यह विभिन्न मूल्यों की सृष्टि और अभिव्यक्ति करता है।

आज के मौलिक गुण में अधिकतर समीक्षक, समाजशास्त्रीय या वैज्ञानिकों का धारणा यह है कि मूल्यों की बहुत संख्या है और विविध है। हमारे देश में मानवतावाद दृष्टिकोण के कार्य मनुष्य के कार्यान्वयन में समस्त मूल्यों का समझना है। और विनियमक विधेयक और दर्शनों के अस्तित्व से संबंध खोजने की कोशिश है। देवराज नीतिशास्त्र, संदर्भ दर्शन और अध्याय दर्शन की धरातल का ही उंगर मानते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का मूल प्रयोग दर्शनात्मक है। फिर भी शब्द जो पन-पन पर विकसित दी गई है, वह रूपांतरण का संदर्भ करता है। इसमें शब्द ने प्राचीन का विविध बना देता है जिसमें मानवीय और धार्मिक को समझने में मदद करता है। यह देवराज मृत्युदेह और मृत्युदेह को अग्रेषण करता है जहां वे किसी वैज्ञानिक का अध्ययन करते हैं। उनका ध्यान केवल मानव-मृत्युका को अधिकरण कार्ययापाय और रत्नाघरा निर्माण करना है।

देवराज प्रारंभिक धरोहर पर गर्व करता है और साथ ही दे नये समस्याओं को ध्यान में रखते हुए नवीनचरण करते हैं। वे नहीं हैं कि आज के एक और आज के विचारों के इंतजार करें। आज के मनुष्यों की हमारी-बीत्तम प्राप्ति करने के लिए अपनी अलीकंद्र में संगठित धोखे का आवश्यकता है। अब हमें नवीन धर्म, धीमी, धीरे आइरूप वह तंत्र के संस्कृतियों के भी तुलनात्मक समझना होगा। विशेषतः यदि नवीन धर्म के अध्ययन में साहित्यिक धाराएं की समझने का प्रयास होगा।

नवीन जीवन दर्शन दृष्टि को विकसित करना चाहते व्यक्ति को अभिव्यक्ति रूप से गुण और दुर्गुण का प्रयास सामा की प्रकरण और समझ करनी पड़ती है।

प्रस्तुत पुस्तक की चर्चाओं करने के लिए विज्ञानिक विषय और पाः तंत्रिक के प्रयोग समीक्षकों की प्रकरण और समझ करनी पड़ती है। फिर संस्कृति के विविध श्रेणियों की व्याख्या की गई है। और रत्नाघरा में अपने शिक्षाओं का प्रयोग
आधुनिक जीवन की प्रायः समस्त समस्याओं को हल करने में किया है। लेखक को अपना अभिव्यक्ति प्रयोग करने के लिए अनेक शब्द तथा व्यज्ञानी गहनी पड़ी है और अपने मन की स्थापना के लिए अनेक विद्वानों के शिक्षादाताओं के सारगमित अंशों का सहारा लेना पड़ा है।

एक ओर तो देशराज मौलिकताओं से प्रभावित करते हैं, तो दूसरी ओर वे ईमानदार का भी बड़ी भूमिका करना चाहते हैं। इसका कारण यह है कि वे मानववाद में अधिक विश्वास रखते हैं। उनके अंतर्गत मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी प्रजातिकल्पना में है।

इसके अतिरिक्त कई स्थानों पर ‘समाज’ जैसे इतिहासीत अनुभव, साहित्य और संस्कृति के धार्मिक अनुभव में, भौतिक और सांस्कृतिक रूपों में, अत्यधिक विविधता देखते हैं। उनके अनुसार मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी प्रजातिकल्पना में है।

6. भारतीय संस्कृति : महाकाव्यों के आलोक में :

चन्द्र 1960 में प्रकाशित यह पत्र हिन्दी-संस्कृत-संग्रहालय का 42वां पुस्तक है। प्रस्तुत पुस्तक लिखते समय देशराज का उत्साह रहा है ‘भारतीय संस्कृति’ के मूलयों की जीवन अवसर या चेतावनी उत्तर देना करना। इसमें यह भी दिखाया का प्रयत्न किया गया है कि भारतीय संस्कृति की दृष्टि से ये कौन-कौन से जीवन मूल्य थे जो भौति की या जाति की महत्ता बढ़ाने में सहायक थे।

इस पुस्तक में भारतीय संस्कृति को एक विशेष दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया गया है। यह दृष्टिकोण जीवन मूल्यों के अचेतन व उत्पादन का दृष्टिकोण है। इस प्रयत्न की सफलता के लिए अध्ययन का आधार भारतीय वास्तव के महत्वपूर्ण महाकाव्यों को बनाया गया है।

‘भारतीय संस्कृति’ पर दर्शनशास्त्र की अनेक पुस्तकों के प्रस्ताव हैं। अनेक लेखकों ने भारतीय सरोणों के आलोक में हमारी भारतीय संस्कृति को समझने-समझाने का प्रयत्न किया है। इस दिशा में स्वाभी वैज्ञानिक, स्वाभी रामार्टिक, जैसे. विशेष यथार्थता का आदर ने उल्लेखनीय कार्य किया है। देशराज उन्हीं दर्शनों का प्रतिद्वंद्व नहीं करना चाहते थे और जिस तैनिक जीवन से संबंधित वह उपेक्षा उन्हें है उनको अपने मनुष्यता प्रस्तुत करना देशराज ने आवश्यक समझा है।

इस पुस्तक के प्रारंभ में, आलोचना विषय की समग्र दृष्टि के लिए वेदों, भागवतों तथा उपनिषदों की हीरोधी से चर्चा आरंभ है। इसके बाद रामकथा-महाभारत में निहित संस्कृतिक चेताना को लक्षित करने का प्रयत्न किया गया है। इसके न्यायाला और माध्यम, श्रीरंज तथा तुलसीदास के भाष्यों में निष्पादक जीवन दृष्टियों का उत्पादन हुआ है।

इस पुस्तक में विश्वासपालन के बाद ‘भौतिका’ में देशराज ने पुस्तक में संगीतित्व अपने अनेकों के विषय प्रेम की बात करते हुए और भारतीय संस्कृति का अर्थ स्पष्ट करते हुए इस तत्त्व की स्थापना की है कि हिन्दू संस्कृति इस देश की सबसे अधिक व्यापक पद्धति समुद्र संस्कृति है, यह सबसे बड़ी और जीवक संस्कृति धारा है जिसे अनेक उपयोगों ने पुनरूप एवं संपत्ति किया है।
संस्कृति के संबंध में अपना दृष्टिकोण पाठकों को समझाने का प्रयत्न करते हुए देवराज कहते हैं - "इसके लिए 'संस्कृति' शब्द और उससे मिलनेवाला विशेषण संस्कृत" प्रश्नावलीक पद है इसलिए कहना चाहिए कि संस्कृति मानवीय व्यक्तित्व की वह विशेषता है या विशेषताओं का समूह है जो इस व्यक्तित्व को एक खास अर्थ में महत्त्वपूर्ण बनाता है।

....... वस्तुतः संस्कृति उन गुणों का समुदाय है जिन्हें मनुष्य अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा अपने प्रयत्न से प्राप्त करता है।

भारतीय संस्कृति के निर्माण लम्बे इतिहास को देवराज ने चार कालों में विभाजित किया है। पहले युग का प्रसार ये वैदिक काल से लेकर रामायण-महाभारत के निर्माण तक मानते हैं। उनके अनुसार दूसरा काल भारतीय संस्कृति का वर्ण युग है जिनके प्राप्तिवर्ग गायक व प्रवक्ता महाकवि कालिदास, भारतीय तथा भारतीय है। भारतीय संस्कृति की तीसरी काल हथेली इतिहास का माय युग है, जिसका प्रारंभ मुसलमानों के आक्रमण के साथ मानना चाहिए और जिसका प्रसार अंग्रेजी के आयोगने तक रहा। भारतीय युग का अंतिम युग देवराज आधुनिक काल को मानते हैं जिसका प्रारंभ अंग्रेजी राज्य की स्थापना के आसपास वे मानते हैं।

प्रस्तुत निबंध संग्रह में देवराज ने रचसंपर्क अक्षय अंशुद का युग का किया है। पहले युग का अक्षय अंशुद से युग के अनुशालन के लिए नैपर्बत शूप है, और दूसरे युग का संस्कृति विशेषण यह दिखाते हैं कि वह युग हार्दिक संस्कृति के चरण युग से किन बादों में मिला एवं होता था।

प्रथम खंड ‘भारतीय संस्कृति - बीज और अंकुर’ अख्ताय में वैदिक काल में रामायण-महाभारत की वात करते हुए देवराज कहते हैं जिस युग का इतना महाभारत में है वह अनेक प्रकार के अंतर्विश्वासियों तथा बाहरी-भीतरी दृष्टियों से पूर्ण है। इसके बिहित रामायण में विस्तार संस्कृति बदला होता है दो मित्र संस्कृतियों या समस्ताओं का संघर्ष है। अपने इन दोनों महाकाव्यों के कव्य, संदेश, चित्रक, आदर्श आदि की खुलकर पढ़ना करते हुए देवराज ने संस्कृति चेतना का भी परिचय दिया है।

द्वितीय खंड 'भारतीय संस्कृति' उत्कृष्ट काल में कालिदास, भारतीय तथा भारतीय इन दोनों कवियों की चर्चा की है जिसमें उन कवियों के सौंदर्य तथा उदयहरणों के साथ उभारने का प्रयत्न देवराज ने किया है। अगले अख्ताय में नीतिसम्पदा और जीवन विवेक को ध्यान में रखा गया है।

जीवन के बारे में भौतिक या दार्शनिक दिशाओं की प्रस्तुति और व्यावहारिक निश्चय के बीच महत्वपूर्ण कदम है विवेक बुद्धि। देवराज के अनुसार, विवेक के लिए तीतम संस्कृतियाँ नश्वर का समय यह होता है उसी के दो अध्यात्म दो दुरारायों में से हो जा सकते हैं एवं यह दो सिद्ध की स्वीकृति अनिवार्य हो जाती है। ऐसा, "महत्वपूर्ण जीवन-विवेक किसी व्यक्ति अक्षय जानक को, गहरी साधना द्वारा ही उपलब्ध होता है।"
राजनीति, कृत्रिम और लोकनीति में भी यह मानकर चलना आवश्यक होता है कि ऐसी तथा शक्ति जीवन के लिए आवश्यक मूल्य हैं। कोई भी व्यक्ति या जाति, जिसके सफल जीवन की कामना है, इन मूल्यों की उपेक्षा नहीं कर सकती। और उन मूल्यों की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ जरूरी है।

ऐसी शक्ति के उपयोग के लिए देशराज का मानना है कि "ऐसी एवं शक्ति की प्रमुख उपयोगिता यह है कि वे जीवनस्तर को सरल बना दें और हमें आम-जनता कल्पों से बचाए रखें, वे सामाजिक व्यविधि के उत्कर्ष एवं आत्मा के सूक्ष्म का उपकरण नहीं है।" 44

देशराज की दृष्टि में भौतिक विवेक यह है जो हमारे अच्छे तथा कैब्रेन्नों को आगे बढ़ेगे प्रभाव का विवाद दे और जो निर्देश तथा विवाद की भावनाओं से हमारी स्थान का समकाल नहीं है।

अथाया चार संस्कृत माणा से संबंधित है जिसमें संस्कृत माणा का महत्व, उसमें पर्यायों की प्रमुखता, संगीतमाल, साधन-स्नातना और समाज-संस्थान आदि विषयों पर देशराज ने अपने विचार विस्तारित किए हैं।

पूर्वीय खण्ड : 'भारतीय संस्कृति का महत्व' है। इसमें महत्त्वगुणी रूप को समझने के लिए दो महत्वपूर्ण - श्रीनाथ का 'नैचरयवाद' और लुटसीवास का 'रामचरित मानस' का आधार लिया गया है। श्रीनाथ के 'नैचरयवाद' का काव्यदर्श, उसकी विशालता, साहित्यक वर्गीय, पुराण नायक नहीं का वर्णन, मानवीयता का हास, राष्ट्रीय वर्ण, नायक नायिका भर से संगमोहन यही रूप की कमी आदि दिखाते हुए देशराज इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'नैचरयवाद' में संस्कृत काव्य निर्विजित रूप से प्रदर्शित हो दिखाई देता है। 45

'रामचरित मानस' में हिंदू संस्कृति के अंतर्गत देशराज ने वर्ष वर्षानामक तत्त्व, मानवीय अभिव्यक्ति का हास, राम की आलोकितता, जननातीक अभिव्यक्ति, मानस में वर्ण व्यवस्था का समकाल और इतिहास, राम एक संत नायक आदि विषयों पर चर्चा करते हुए कल्पितादाय आदि के काय से मानस का बना बता है। यहाँ भी निष्कर्ष यहीं दिखा गया है कि गान में निःशिक्षित एवं अध्याय का माणा दूर तक कर्म और प्रशंसा के जीवन की विवेचनाओं है। उसमें जीवन-संस्थान के लिए स्थान नहीं दीखता। इस दृष्टि से लूटसी का राम काव्य कृत्य वर्ण, काय के गायकों - सूर विशालिता आदि से भी भी भीत है।

उपर्युक्त में जीवन दर्शन की चर्चा करते हुए देशराज ने लिखा है - "छठ-नीच, गले ढूंढ़ का मेदमाण जीवन दर्शन भी एक अनिवार्य चर्चा है। इस प्राचीनी को बुद्धिमत्ता भाव में निर्पीत कर देना ही जीवन दर्शन है और उस दर्शन को व्यावहारिक रूप देना ही जीवन विवेक है।" 46

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जीवन दर्शन के बारे में देशराज का विवेचना काफी गहरा और व्यावहारिक है। वे सदा अपने पाठकों के दर्शन-विवेचना को भी उत्तम बनाने के लिए प्रमुख प्रतिष्ठित रखे हैं। वे अपनी भारतीय परंपराओं के परंपरागत प्राचीनता के समकालीन नहीं हैं, किन्तु उन्हें यह भी पत्तांद नहीं है कि हम आज अन्य, विवेक गुण एवं स्नातकों को ऐसा कर कर चलते हैं, उन्हें यह भी चिंतकह नहीं है कि हमारे देशवासी अपने को हीन समझते हैं परिवर्तन का अन्वमिश्रता अनुकरण करें। हमारे लिए इन संस्कृत रास्ता वे यह
बताते हैं कि हम अपने देश के अन्तर्गत तथा यूरोप के वर्तमान, दोनों के प्रति उचित आत्मविश्वास एवं विवेक के साथ समस्त प्रतिक्रिया करें और दोनों की जीवनदार्शिनी परम्पराओं की प्रेरणा लेते हुए संज्ञा साझा से आगे बढ़े।

इस पुस्तक में संस्कृत काव्य के नैतिक बोध की प्रशंसामूलक चर्चा की गई है।

7. प्रतिक्रियाएँ

सन् 1966 में प्रकाशित देवराज का यह चौथा आलोचनात्मक प्रंत है। छायावाद का पतन, साहित्य कित्ता और आधुनिक समीक्षा का सर्वोत्तम इसमें समाप्त है। पुस्तक की विशेषता में ही यह प्राप्त होता है कि उनकी रचना सैद्धांतिक आलोचना में है, व्याकरणिक आलोचना में नहीं। साहित्यगत महत्व के विचारों के अनुसार स्पष्ट, उनको विशेष ग्रेव रहा है।

इस संस्करण में कुल 16 निबंध हैं। कुछ सन् 1960 के बाद के, कुछ सन् 1945 से 1950 के बीच के और एक निबंध ‘आदि काव्य’ सन् 1942 के आलस्य का किरदार हुआ है। इन निबंधों को संकलित करने की प्रेरणा डॉ० नामकर सिंह से उन्हें मिली - उन्हें देवराज का आलोचनात्मक लेखन परंद आता है। किर भी इलियट जैसे लेखकों के समीक्षक कृतियों के आगे देवराज को अपनी सीमाओं की तीव्रता अवगत होती रही है। उनकी प्रादर्शनिक मान्यताएँ और उनके आयारमूल मानदंड प्राप्त आलार्थ शाक्ति, हरिय और टी.एस.रिलैंट के शिक्षाओं से सम्बन्धित हैं। इसके बाद उनके शिक्षक व्यक्तित्व की मौलिकता सर्वथा सुरक्षित है।

विवेकानन्द विवेक और समाजवाद समीक्षक देवराज की इस आलोचनात्मक पुस्तक में उनके कुछ सैद्धांतिक निबंध संकलित हैं। इनके अन्तर्गत ‘उर्वरी’, ‘लोकतांत्र’, ‘बन्धुप्रेम’, ‘नादा संप्रदाय’, ‘पारंपरिक और वर्तमान सम्बन्ध’ में रचित हैं। इस निबंध की रचना विवेकानन्द की अनुसार मान्यता तथा प्रमाण में संकलित हैं, जिन्हें लेखक ने विवादित विषयों ‘प्रतिक्रियाएँ’ कहा है।

समकालीन सूत्रों का विवेचन करते हुए लेखक ने अंतगत आलोचना के प्रतिस्पर्धा निरस्त करने का प्रयास किया है। ये विवेकानन्द से प्रतीत होते हैं। एक चौथाई आलोचना की ज्ञात लेखक ने निबंध का सार्वा ही अत्यंत बुद्धिमत्ता से एक चौथाई आलोचना की 'प्रतिक्रियाएँ' कहा है।

’आदि काव्य’, ‘रामचरित मानस : पुरुषोत्तमन’ एवं मुख्य ‘तुलसी और भारतीय संस्कृति’ जैसे निबंध इस संस्कृति बोध की प्रमुख वैधता तैयार करने के लिए ही प्रस्तुत पुस्तक में संकलित हैं। इस प्रकार कहना न होगा कि देवराज की यह पुस्तक आधुनिक आलोचना साहित्य में एक महत्वपूर्ण योगदान है। पुस्तक की विशेषता में ही देवराज ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सैद्धांतिक विचार अपने साथ आलोचना साहित्य ने सामने प्राप्त नहीं रहा है।

46
इस पुस्तक की भूमिका में देवराज इलियट के इस वक्तव्य से दूर तक सहबद्ध है कि एक वर्तमान कथा से दूर तक सहबद्ध है कि एक महत्वपूर्ण अर्थ में, नये पुराने समस्त बड़े साहित्यकार समकालीन या एकालीन हैं।

'कमाया हुआ सत्य' निबंध में देवराज इस बात से हम लोगों को जागृत करना चाहते हैं कि हमारे साहित्य में उल्लेखनीय या स्थायी महत्व की आचरणात्मक एवं साहित्यक वृक्षों का अभाव है। जबकि दैविक जैसी समस्त भाषा में प्राय: प्रत्येक विश्व पर बड़ी सांख्यं में महत्त्वपूर्ण व्रत मिलते हैं।

आल्मसल की हुआ सत्य और कमाया हुआ सत्य की चर्चा करते हुए देवराज लिखते हैं कि "आल्मसल की हुआ सत्य दूसरे स्त्रीत्रों से हिम्मत आया सत्य भी हो सकता है। जबकि कमाया हुआ सत्य आल्मसल के बने हुए सत्य से कुछ भिन्न कोटि का होता है, तो यह वह पहली कोटि के सत्य से उच्चतर न हो।" 59

कमाया हुआ सत्य के पीछे जीवनन्दायी साहित्य का बल रहता है इसलिए उसकी अमदानता लाभकारी होती है। कमाया हुआ सत्य पूरा का पूरा किसी एक विन नहीं किया जाता।

देवराज की किसी भी वाद से राग व्यवस्था नहीं है, किन्तु वे लेखक विशेष के बाद की अपेक्षा उसके कृतियों के धरातल को ज्यादा महत्व देते हैं। हिन्दी में महत्वपूर्ण समकालीन अत्यन्त और अधिनायक शब्द नहीं होते जो देखा जाए से इसका भावना कारण देवराज बताते हैं - "हिन्दी पाठकों में ऐसे शब्दों की मौजूदा और उनने आदर्श देने योग्य विचार की कमी।" 60

देवराज ने एकालीक स्थानों पर सरल व्यंग से साहित्य समकालीनता के महत्व को स्वीकार किया है।

आवर्जन रामचंद्र शुक्ल और टी.एस.बुशियर को तो प्रस्तुत पुस्तक देवराज ने समर्पित कि दे जिन्होंने मतदान रखते हुए भी उन्होंने काफी कुछ सीमाएं। आवर्जन रामचंद्र शुक्ल के अनुसार कहते हैं कि "युगांतर करते हुए मुंशाब लोगों का भाषण है - "शुक्ल की आवर्जन-आवर्जन नहीं होंगे, व्यक्ति उनमें सद्द पीँ को निर्माण की नहीं, तथ्यों को पकड़ने की समझ है - और अल्मसल देने वाले तथ्य की पुरात नहीं पड़ते।" 61

समकालीनता के संदर्भ में देवराज ने यह स्वीकार किया है कि पाठक की व्यवस्था साहित्य से नहीं होती, वह नवीन तथा समकालीन साहित्य के लिए स्वीकार है। किन्तु इसके साथ ही उन्होंने वह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा है कि साहित्य में "नवीन" की अपेक्षा होते हुए भी वह साहित्यिक महत्व का परम्य नहीं है। 62

नवीनता साहित्य का एक ऐसा तरीका है जिसके अर्थ में साहित्य का प्रदर्शन है सकता है, किन्तु मात्र नवीनता उसे महत्व अभाव समकालीन नहीं होता है। मैलिकासर और आदेशिकता से जुड़ता हुए नवीनता के देवराज ने सिद्ध श्रेणी का लघु भाषण कहा है। मैलिकासर का एक व्यंग व्यंग रखता हुए उन्होंने कहा है "मैलिका कहानी के लिए शर्त नहीं बाल कहानी काफी नहीं है। बाल ऐसी भी होती चाहिए जो जीवन या अनुभूति के किसी क्षेत्र पर नया प्रकाश दाल सके। असाधारणकृत्व स्पष्टक धैर्य, दूर की कौशल, ध्यान माले ही
आकृष्ट करें, विचारावशेष को दुर्लभ नहीं प्रतिष्ठित होती।”\(^{58}\)

आधुनिकता इन दोनों से मिलएक एक दृष्टिकोण है। देवराज आधुनिकता का भी नवीनता के समान साहित्यिक स्तर से अभियांत्रिक स्थिति स्वीकार नहीं करते। ये दोनों तथा साहित्य को आकर्षण को बनाते हैं किन्तु साहित्यिक महत्व अथवा महानता के साथ इनका होना पर्याप्त नहीं है। ... “नवीनता और स्पर्श में, और आधुनिकता तथा स्तर में भी कोई आवश्यक लगाव नहीं है। यहाँ नवीनता तथा आधुनिकता का साथ उलझए इसलिए है कि हिंदी के लेखक प्रायः आधुनिकता को न्यूनता का पर्याय जैसा मानते हैं, यानी अलौकिक से निर्भर का। इससे विपरित में विचार है कि आधुनिकता विश्वासता से अधिक उस दृष्टि का गुण है जो किसी रचना को अनुप्राणित करती है।”\(^{54}\)

देवराज के अनुसार शैव साहित्य की रचना के लिए साहित्य से संबंध तथा बुद्धि उपयोग धर्मतत्त्वों पर गहरी प्रतिक्रिया अण्डित है। केवल एक धर्मतत्त्व की प्रतिक्रिया घनत्व नहीं है। इसलिए केवल बलुक व्यक्ति और केवल गुणक विचारक, दोनों अलग-अलग उत्तर अनुका नेशन और विचार नहीं कर सकते जितना कि वह व्यक्ति जो एक साथ ही बलुक और विचारविरोध से कहते नहीं हैं। इसी गहरी प्रतिक्रिया भी कहते हैं, उसका समाच घनत्तिजी जीवन के अपेक्षाकृत बड़े-यादी ऐतिहासिक-परिवेश और जीवन के अपेक्षाकृत व्यक्तियों और स्वयं प्रवृत्तियों से होता है।”\(^{55}\)

देवराज ने जीवन के कुछ पहलों के विचार को साहित्य की श्रेष्ठता के लिए अनिवार्य माना है। वे लिखते हैं - “बड़ा लेखक संस्कृति संपन्न होता है। बिकासशील लेखक में जीवन बोध और सांस्कृतिक बोध की प्रमाण संघ-साथ चलती है। शैव लेखक अपने अनुभव का इस बंग से प्रकाशन और प्रयोग करता है कि वह ऐतिहासिक मनुष्य अथवा मनुष्य के इतिहास पर अर्थात रोशनी बाल सके।”\(^{56}\) निष्कर्ष: संस्कृतिशोध साहित्यिक श्रेष्ठता का पर्याय हो जाता है और देवराज ने उस साहित्य की आलमा के रूप में स्वीकार किया है।

‘कुछ उपयोग और उपायार्थकर’ शीर्षक के अंतर्गत देवराज ने जैनत्तला के ‘सुनीता’ और ‘स्थायापत’ दो उपन्यासों की चर्चा की है। अहोरों के ‘ग्रीष्म’, बहादुरगिरि नदी के ‘बाणगर्द’ की आलमा, फणीसरास्थन रेनु ने ‘मैला और आदि उपन्यासों की चर्चा भी की है।

‘प्रतिक्रियाओँ’ - शीर्षक के अंतर्गत जैननाथ सादोक का ‘सह और माल’, यशपाल का ‘दुधा सच’ और मोहन दोकेर का ‘अंधेरे बन्द करने।’ इन तीनों उपन्यासों के बारे में देवराज ने अपनी प्रतिक्रिया यहाँ स्पष्ट की। उन तीनों उपन्यासों का एक दूसरे से जुड़नेवाला अध्ययन करते हुए उनकी विशेषताओं और सीमाओं का संकेत देवराज ने किया है। जैसे - “कहानी की दृष्टि से ‘दुधा सच’ पूर्ण और ‘अंधेरे बन्द करने’ अपूर्ण साहित्य लगता है।”\(^{57}\)

तीन कथा को लेकर भी देवराज की प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती हैं। धर्मवीर भारती की ‘कुन्दप्रेम’, विनोबा की ‘जीवाइयी’ और सुभाषचन्द्र पंत का ‘लोकवाणि’ - इन तीनों पर बड़ी सहानुभूति से समीक्षा की गई है।
देशराज संदेशपत्री होकर भी रूढ़ अर्थ में मर्यादावादी या नैतिकवादी नहीं है। दे तो एक धरातल पर साहित्यिक साहसीत्व के विरोधी है। इसलिए इनके रचनात्मक साहित्य और आलोचनात्मक मानदंडों में अनावश्यक नैतिक संयंत्र का अभाव है। फलस्वरूप डॉ. कुमार विवल के अनुसार, "इनकी कृतियों में दूरचत शुभारूढ़ को उड़े से खेड़-खेड़े नाम के प्रयासों आलोचनात्मक मुंहांक उदय तथा जोखिम है।" इनकी अपनी उत्तरार्था और आलोचनात्मक दृष्टिकोण की स्थिरता स्थापना को बिखर देते हुए लिखा है, "आलोचक को विवरण साहित्यिक कृतियों और साहित्यिकों को अपेक्षा, एकनिष्ठ प्रेमी नहीं, बल्कि अंतर्निःसृष्ट लगभग मनोवृत्ति का व्यक्ति होकर चाहिए, ताकि वह संत कवि तुलसीदास और निदर्शि व मस्ति के गायक उजर खेम, दोनों को शहरुमुग्त बेदमात्र दे सके।"

8. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध : 

सन् 1977 में प्रकाशित देशराज का यह एक अनुभव निबंध संग्रह है जिसमें दस निबंध और पर विचार विशुद्ध संकलता है।

देशराज मनोकथासी और दर्शनशास्त्र के अधिकारी विद्वान माने जाते हैं। साथ ही आलोचना के क्षेत्र में उन्होंने अपनी एक अलग ही पहचान बनाई है। डॉ. धनंजय वर्मा के अनुसार, "रचना और आलोचना के बीच रस्ताबंध का जो भारु हिंदी में खड़ा कर दिया गया है, उसके नुकसान खालने की मिसालों में से एक है। देशराज की आलोचना।" डॉ. धनंजय अपने उत्तर यथा का स्पष्टीकरण देते हुए उसकी दो उपयोगी बातें स्वीकार करते हैं। एक तो यह कि देशराज खुद भी एक ऐसे सम्पत्त रचनाकार हैं जो रचना को महत्त्वदायी तत्त्वों के माध्यमों और इतिहासकार की चीज़ न मानकर उसे ऐसा चेतना और विवेकशील मानवीय केंद्र मानते हैं, जिसमें सुहृत और रचनाकार का सांस्कृतिक बोध, नैतिक दायित्व और मानवीय दृष्टि उपजागर होती है, दूसरे अलेक्स को उस रचनात्मक संपदा शीलता के साथ ही चुनाव के विवेक से समृद्ध करते हैं, केवलक इतिहास की प्रतिस्पर्धा और प्रवाह से उसके जोड़ते हैं, मनुष्य का सांस्कृतिक चेतना और बोध से उसकी भूमिका मजबूत करते हैं।

प्रसन्न द्वारा संग्रह के निबंध 'अद्वितीयाँ' के बाद के तथा समाचार-समाचार पर प्राप्त कहाँ की मांग की पृष्ठि के लिए लिखे गए हैं। लेखक के खुद निजी विचार अधिक पत्रिकालित और पुस्त होकर और रचनात्मक साहित्य के मूल संदर्भ में संग्रह होकर व्यक्त हुए हैं।
'आदुनिक बोध और संस्कृतिक मूल्य' - इस निबंध में देवराज ने अपना मत प्रतिपादित किया है कि अच्छे पुर्वज चित्र की लेखन के लिए लेखक का संस्कृति संप्रदाय समृद्ध होना चाहिए है। "संस्कृति तत्त्व वह है जो हमारे चेतनामूलक जीवन एक स्पष्ट व्यक्तित्व को समृद्ध सुंदर और खेत्रा मानना है।" ।

संस्कृति को वह तत्त्व भी मानते हैं जो हमारे जीवन को परिपूर्ण, विशेष रूप से उद्देश्य और संरचनाशील बनाता है। एक अच्छे लेखक के लिए ये अनुभव का समय दायरा और उसकी दृष्टि में बाबरीकी को अधिक महत्व देते हैं साथ ही वे मानते हैं कि सर्जनव फैल में आगे बढ़ते हुए यह भी जरूरी होता है कि उसकी माननीय जीवन के नैतिक आयाम और उसके मूल्यों एवं प्रथाओं में जीवंत अतिरिक्त हो।

संस्कृति तत्त्व का मुख्य वर्तमान मानवीय जीवन को, केवल उपयोगी क्रिया-कलाओं के ध्रुतता से ऊपर उद्धार चेतना या बोध की निरुपमी भूमिका में भेदित करना है। संस्कृति के मुख्य तत्त्व सार्वदैर्य-बोध, नीति बोध और आध्यात्मिक बोध हैं।

इसके बाद आदुनिक बोध की चर्चा करते हुए देवराज कहते हैं, "हमारा सार्वदैर्य-बोध, नीति बोध आदि विशेष रूप से निर्भरित रहता है। युगों की संस्कृतिक यात्रा में यह दृष्टि क्रमशः विकसित और विकसित होती है, यह बदलती भी है। यह बदलना कभी-कभी अधिक महत्वपूर्ण रूप से लेता है, विशेषतः ऐसे युग में जबकि पुरानी आध्यात्मिकों का विविधता हो रहा है। हमारा युग ऐसा ही युग है। पुरानी आध्यात्मिकों और मूल्यों का विविधता की दृष्टि से शायद हमारा युग पुराने सब युगों से आगे है।" ।

अंत में अर्जुन के लेखक से देवराज पूर्व युगों के लेखकों की अपेक्षा ज्यादा जानकार, नैतिक बोध और ज्यादा बड़ा विचारक होने की उम्मीद रखते है।

देवराज के अनुसार साहित्य का मुख्य उद्देश्य "हमारी जीवनक्रिया को उत्पन्न और समृद्ध करना है; न कि उससे बढ़ करना।" ।

'संस्कृति, साहित्य और संयोग' निबंध में वे कहते हैं, "आज के मनुष्य का वर्तमान किसी परस्पर की यथार्थता स्थिरकर नहीं करता। फलतः वे सारे विधि निषेध निष्पक्ष सांख्य परस्पर की दक्षिणा से है, आज अर्थवर्ती लगाने लगे है। इसलिए आज के लेखन के सामग्री विविध की चिन्ता को माहित्य तथा उसका नया आयार खोजने और देने का स्वाभाविक साधन हो जाता है।" । इसी निबंध में वे मानते हैं कि आवश्यकतामूलक लेखन युग की समस्तकी जीवन दृष्टि के प्रकाशन का उपयुक्त माध्यम नहीं है। किसी लेखक की जीवन दृष्टि पर राय देने की अनावश्यक चेतना न करते हुए भी किसी आलोचक कृति की कमियों का सटीक संकेत किया जा सकता है।

तीसरे निबंध 'रचना प्रक्रिया : सामग्री दृष्टि और स्पर्श' में देवराज सिंहते हैं - "काव्य दृष्टि स्पर्श ही किसी चेतना और संरचना व्यक्ति या व्यक्ति चेतना से संबंधित होती है, ऐसी दशा में उस सूचि या काम को प्रक्रिया शब्द से संबंधित नहीं करना चाहिए। लेकिन एक गहरापूर्ण अर्थ में काव्य दृष्टि (या कला सूचि) एक स्तंभ स्पर्श, न्यूमार्क अनुभवित या अभिनयित ध्यायार है, इसलिए उसे प्रक्रिया शब्द से अभिन्न किया जा सकता है।" ।
देवराज ने इस निबंध में रचना प्रक्रिया की सामग्री और उसके संदर्भ को सर्वप्रथम प्रदान करने वाली दृष्टि की चर्चा की है तथा रचना के स्तर या धरातल पर भी अपने विचार प्रकट किए हैं।

'काव्यमार' निबंध में देवराज कहते हैं कि, "किसी शब्द के प्रयोग की शक्ति या सार्थकता का अंदाज करने के लिए आलोचक को यह देखना चाहिए कि वह लेखक द्वारा प्रकटित संदर्भ या स्वरूप को कहां तक अपेक्षित गृहत, शक्ति और सौंदर्य देता है।"87

मनुष्य के आत्म प्रकाशन का सबसे सबल और स्वभाव माध्यम भाषा है। आम तौर पर अनेक विद्वानों और समीक्षकों के विचार से काव्य या स्वरूप के महत्व का साहित्य की भाषा माध्यम द्वारा कहा जा सकता है। देवराज ने प्रस्तुत निबंध में शब्दों या भाषा के सर्वनामक प्रयोग को समझने की कोशिश की है। उनके अनुसार काव्य भाषा किसी भी तरह के अथों का बनना नहीं करती।

'लेखक और समीक्षक' निबंध में साहित्यविद की व्याख्या देते हुए देवराज कहते हैं - "शीर्षक के संदर्भों और अनुभवों का व्यवस्थित भाषाध्यात्मक प्रकाशन है साहित्य। साहित्यकार देखें और भोगें हुए जीवन की पुनःसृष्टि या पुनर्निर्माण करता है। इस पुनर्निर्माण द्वारा वह हमारी जीवन दृष्टि या जीवन क्रिया को बेगुरौरूप दु:सम्पूर्ण बनाता है।"88 साहित्य जीवन की अनुकूलता न होकर उसकी प्रायोजनक दृष्टि की है। समीक्षक उस सर्वनामक कृति का विश्लेषण तथा मूल्यांकन करता है। आलोचक का काम रचनालिख अनुभव के स्वरूप को समझना और उसके पुनर्निर्माण सीमाना का इतिहास उसना है। देवराज का यहाँ मानना है कि कोई भी समीक्षक रचना की संपूर्णता को विश्लेषित करने के पाठकों के लिए ही पहुँच सकता। यह प्रकार लेखक देखें और भोगें हुए जीवन को पुनःस्थाप करके पाठक के सामने रखता है, वैसे ही समीक्षक अनुसूचीत रचना को अपनी खास दृष्टि से विश्लेषण और मूल्यांकन करके पाठक के सामने रख देता है।

साहित्यिक रचना का मूल्यांकन किस दृष्टि या किस दृष्टिकोणों से करना चाहिए? किसी रचना को आंखें हुए हम रचनाकार की सांन्त्विक दृष्टि या जीवनरूप देखने को कहाँ तक तद्वन हैं - आदि अनेक प्रश्नों का उत्तर देवराज ने अनेक प्रश्नों को समझाता है। सफल आलोचना करने के लिए यह जरूरी है कि समीक्षक को अनेक बड़े लेखकों के कृतियों का बोध हो। और उसी यहाँ भी अधिकार नहीं है कि यह लेखक पर किसी खास जीवन दर्शन का लाभ न करे। अतः समीक्षक में तर्क-तर्क के साहित्य का रस लेने की क्षमता होनी चाहिए।

'लेखक और आलोचक : विकासार्थीता का प्रश्न' इस निबंध में देवराज लिखते हैं, "हमारी मानन्यता है कि किसी भी लेखक को तब तक सिखने देना का अधिकार है, जब तक एक शब्द में, वह विकासशील है। अपनी महत्व का प्रश्न है इस विकासशीलता का स्वरूप और पहचान क्या है?89 अनेक प्रश्नों के साथ देवराज अपने निश्चय देते हैं कि एक खास उम्मीद पक्ष लिया कोई लेखक समस्याओं ऐसी कृति का प्रणयन नहीं कर सकता जो समझदार पाठकों को आकर्षण कर सके।"
देवराज के अनुसार लेखकीय विकास के क्रमों के आयाम नैतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक या दार्शनिक है। इन आयामों में समृद्धि प्रदान के लिए यह जरूरी है कि लेखक गहरे अर्थ में पृथ्वीशाल और विज्ञानी हो, वह सहज ही किसी नये पुराने वाद या दलील के प्रति आक्र लस्मान कर देनेवाला न हो।

एक अन्य स्थानवान देवराज ने कहा है - यह है जो लेखक खिलाना ही बड़ा होता है, वह अपने और विद्वान दृष्टियों के ज्ञान-विद्वान, खिलान और लेखन का उताना ही अर्थी होता है। युग-युग का दृष्टि खनन और जीवन शक्ति और योग्यता से संपन्न लेखक ही युग का महत्वपूर्ण लेखक बन सकता है।

लेखक के सम्बन्ध में असल तक विकासशील रहने के लिए ईमानदारी और अध्ययन से सहस्तर ग्रस्त्र प्रतिमा के अलावा एक चीज और जरूरी है नवनयन।

'संस्कृति बोध : एक और स्वयंकरण' - में देवराज ने साहित्यकर के लिए संस्कृति बोध की उपयोगिता पर लेख लिखा है जिसमें उन्होंने कहा है कि "संस्कृति बोध का अर्थ है, इस अर्थ में उताना ही महत्व देता है। खिलान क्षणिक विचारक कार्य के प्रारंभ तत्त्व के रूप में रस को देते हैं।" इस विधि की स्पष्टता भी उन्होंने कहा है। अगर तुलनात्मक और सादृश्य की पक्षियों में भावनात्मक बौद्धिक दृष्टि में निर्भरता है। अनुभव की गहनता के लिए देवराज तत्त्व-तत्त्व के विचारकों के प्रति संपर्क को भी लेखक की प्रबुद्ध जीवन वृट्टि और योग्यता के लिए अवधें महत्व देते हैं। अंत में उन्होंने कहा है - "उस साहित्य कार्य का आगामी अच्छा लेखक आवश्यक नहीं का अर्थ की अवधें को, उसका क्रम के बीत जाने के बाद, बोधकृत्ति द्वारा निर्धारित चिन्ताओं में उतारने के प्रयत्न से आकार पाता है।"

'संस्कृत कायाशास्त्र और विज्ञानकाठिन' निवंद्ध के प्रारंभ में देवराज लिखते हैं, "संस्कृत भाषा में निर्मित और लिखित साहित्यशास्त्र का अर्थ काश्यक काँसी प्रायः और अनुज्ञ ग्यान जा सकता है। फिर भी उनके के उपरोक्त सिद्धांत आज के साहित्य प्रेमियों की विविधता तथा आवाहन लग सकते हैं।" संस्कृत साहित्य शास्त्र में लेखक प्रायः कार्य के सशीर और उसकी आत्मा में भेद करते हैं। देवराज इस पर विश्वास करते हैं कि "सशीर और आत्मा का मेद कालिया दर्शनों को स्वीकृत प्रायः साहित्यविद्या में जीन और अन्य विद्वानों में उसे अनुभवीकरण को एक स्वतंत्रता स्तर के रूप में मानना देने भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने अपने को भोग भ्रम में बाधित किया। इस नामता या पूर्वाग्रह के कारण वे कार्य संसर्ग कुछ तत्त्वों को दूर रखा गया हो।"
नवलेखन में देवराज का मानना है कि हिन्दी के अधिकांश लेखक दूरे के विचार
साहित्य को पढने की योग्यता नहीं रखते। कहाँ तो ये सार्थक, यास्पर्स, भले भी पैन्नी आदि के
दृष्टियों और विचारों से सत्तह परिचय प्राप्त करने के अपने को प्रदुषित और क्रूरतृत्व महसूस
करने लगते हैं। किन्तु मानवीय जीवन और सम्पत्ति के बारे में खुद अपनी दृष्टि बनाने की
योग्यता संभालित करने के लिए सिर्फ़ साहित्य और साहित्यकारों को पढ़ना काफ़ी नहीं है।

इसी निबंध में देवराज समीक्षकों के लिए भी कुछ कहना चाहते हैं, "एक तरह से
विद्वत्ता समीक्षक को, समाजीण अथवा लेखकों की अपेक्षा भी, अधिक व्यापक और उदार
दृष्टिकोण होना चाहिए। अपनी संवेदना की सीमाओं के कारण अधिकांश लेखक एकांगी, एक
लोहा की समस्याओं और गैरस से जुड़े घटनाएँ प्रस्तुत करते हैं। लेकिन समीक्षक उन तरह की
एकांगिता की जोड़ीम ही लेना चाहिए। इसके विपरीत हिन्दी के साहित्य जगत में स्थिति
यह है कि लेखक और आलोचक दोनों युगबद्ध और आधुनिकता के आस-पास की आवश्यकता
निर्माता के रूप में एक दूसरे से घोर एकांतवादी होने की होड़ करते हैं।"

'उद्धृत कविता और निर्धारित गाणितिक का कृतित्र' - इस निबंध में उर्ध्व गजल की
विशेषताओं का उल्लेख करते हुए देवराज ने गाणितिक का गजलों की आलोचना की है। दृष्टिकोण
संग्रह रबर देवराज की आलोचनाओं में ध्यान की उलझना पाते हैं और इसका सुखद दृष्टिकोण
भी उन्हें है किन्तु उन्होंने 'बासर विनग्रूप कायमशास्त्र और वित्तकाल' तथा 'उद्धृत कविता
और निर्धारित गाणितिक का कृतित्र' संपीड़क निबंध उन्हें देवराज के बाएँ हाथ से लिखें हुए
लगते हैं। "उनमें दो देवराज की अपनी ध्यान करीब रचना और आलोचना मनीषा किसी हद
tक अलगाविक हुई दिखाई देती है, लालमू भी यह निर्माता का मूल्य तो देखते हैं।"

इस निबंधों के अलावा इस संग्रह में छह विचार बिन्दु भी संकलित किए गए हैं जो इस
संग्रह को अधिक महत्वपूर्ण बनाने में सहायक होते हैं। ये विचार बिन्दु निम्न प्रकार हैं।

1. लेखक और आलोचक
2. शिक्षा और साहित्य
3. साहित्य और वैज्ञानिकता
4. मधुलेखकों का लेखन
5. 'श्रीरामकिशन
6. लेखकीय विचार के आवास - श्रेष्ठ विचार बिन्दु

"श्रेष्ठ लेखक और समीक्षक में आलोचक विचार होता है। पर अलग-अलग उसका स्वभाव
नहीं है। उसका अलग-अलग हास्यकप करता है। यह तो है अगस्ता था अलग उसका स्वभाव
होता है। किन्तु उसका विचार प्रदर्शित करता है। यह उसका विचार का अवतार होता है।
उसका स्वभाव आलोचना के अवतार होता है, वह थोड़ी उस संदर्भावलोक्ता, अलग-अलग मनुष्य के
प्रयोगों के प्रति
हस्ताक्षर साहित्य का आमूर्तन है।"
9. आधुनिक हिन्दी काव्य:

आधुनिक हिन्दी काव्य सन् 1988 में प्रकाशित देवराज के काव्य विचार से संबंधित पुस्तक है। इसमें उन्होंने काव्य समीक्षा के बादतूं से नये आयामों का स्पर्श किया है। पुस्तक दो खंडों में है। प्रथम खंड में छायावादी काव्य और छायावादी काव्य पर उनके द्वारा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में "निराला व्याख्यानमाला" के अंतर्गत दिये गये तीन व्याख्यानों का संकलन है। दूसरा खंड अन्य निबंधों का है, जिनमें एक निबंध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचारक अपने समीक्षक का पुनर्जीवित करता है। दूसरा निबंध नामवर सिंह द्वारा "दूसरी परम्परा" की तलाश करता है। एक अन्य निबंध "प्राचीन समीक्षा" की कृपा समस्याओं पर विचार करता है। एक निबंध "प्राचीन समीक्षा" का तुलना का चुनाव करते हैं और एक निबंध ऐसा है जिसमें आलोचना के आवाम और स्तर का सैद्धांतिक विवेचन किया गया है।

प्रथम खंड में छायावादी काव्य पर विचार करते हुए देवराज ने सबसे पहले काव्य सौदर्य के विषय पढ़े, जून और आयाम पर विचार किया है। इनमें देवराज की दृष्टि संतुलित है। "काव्य की परिभाषा और उसकी समीक्षा से संबंधित शायद कोई भी ऐसा प्रयोग नहीं है जिसका अर्थ और आर्थ, पूण्यता रूप में। देवराज काव्य की संपर्कमें पाठक को प्रतिक्रिया को भी स्थान देते हुए कहते हैं - जिस अनुभव को हम काव्य कहते हैं, उसका परिपुर्ण रूप काव्य के कथन मात्र में प्रकट नहीं होता, सहायता पाठक की संग्रह प्रतिक्रिया में ही यह पूण्यता स्वप्न लाभ करता है।" 

आगे देवराज ने काव्य सौदर्य के दो मूल घटकों - रस और चमत्कार - को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार काव्य विभाग की विविधता भी चित्र को चमकाता करती है। उसी तरह रोचक संज्ञा या बाबाना तत्त्व की उपस्थिति रत्नाकर काव्य की आवश्यकता है।

कथा और अभिव्यक्ति के बारे में उनके अपने विचार रूप में कहते हैं - "काव्य सहिष्णु का कथा महाभाषा होता है, जित मुल समीक्षा तथा यह देखना जरूरी होता है कि सहिष्णु काव्य के कथा को कितना बारीकी, पूण्यता और शक्ति से सुनिश्चित और प्रकाशित कर सकता है।" 

छायावादी काव्य सम्बन्धी अनेक समस्याओं में से देवराज की पहली स्थापना है - छायावादी काव्य ने घरी बोली हिन्दी की विश्व खबरों से मुक्ति देने हुए काव्यमान का रूप में बदल दिया। दूसरी विशेषता ये ये मानते हैं कि इसके विशिष्ट काव्य को अनेक विभिन्न विषयों में स्थापित नहीं है। छायावादी काव्य में हिंदी माना ने संवेदन पहली बार प्रकट जगत से सीधे साक्षात्कार करना सीखा। दूसरी विशेषता ये साहित्य में व्याख्याता की स्थापना का मानते हैं जिसका महत्व उसके द्वारा प्रमाणित रचनाओं में। छायावाद ने काव्य को पौराणिकता के द्वार द्वारा निर्दला। इस उपलब्धि का देवराज छायावाद की सब से बड़ी उपलब्धि मानते हैं - वे इसे बड़ी उपलब्धि का घटना मानते हैं - "इस अर्थ में भी कि पौराणिकता का स्वाभाविक रूप से व्याख्याता की दिशा में एक कदम था।"

इन्हें निराला विश्वविद्यालय में "निराला व्याख्यान माला" अंतर्गत उनके तीन व्याख्यान हुए, जिनमें देवराज ने कुछ विशिष्टताओं का भी अंबेडकर किया है। वे मानते हैं निराला के
काव्य में संगीत तत्त्व का विशेष स्थान है। संस्कृत भाषा का औजस्वी स्वर-पिथान उनके काव्य की विशेषता है। काव्य प्रतिभा की उद्भि से से निरंतर के व्यक्तित्व को अनुभवार्थ नाता जाता है।

पंड जी की लघु कविताओं में देवराज कहाँ-कहाँ सुन्दर पतियों पते हैं जो मन मुदक्क को बदलकृत करती हैं किन्तु पूरी कविता को पंड जी उत्तरी सार्थक सजना नहीं दे पते ऐसा मानते हैं। उनके अनुसार पंड जी मूलतः सोमानी मनोकृति और काव्य दृष्टि पाते कवि हैं।

छायावादी कवियों में प्रवेश द्वन्द्व के व्यक्तित्व में देवराज कुछ न कुछ महत्वपूर्ण विषयों से हुँकारते हैं। महादेवी जी की सफलता के दो मुख्य कारण ये मानते हैं - एक है उनके वैदिक युग में जिस विशेष संस्कृति की ब्रह्मी है उसका काव्य रचना में सीमित उपयोग है अथवा विशिष्ट की गतिका एवं परिवर्तन। दूसरे व्चित्र पेट्रिक विशेष भावूक को उन्होंने अनुमय की उपन्यास में दाला, वह काव्य का सवरे प्रयोजन है। उनकी अभिव्यक्ति का काला पत्थर बहुत सुन्दर बन जाता है। उनकी संगीतिक संदेशना कहीं तीर्थ है।

निरंतर जी की ‘राम की शहीघुआ’ का देवराज छायावाद की सबसे बड़ी कविता मानते हैं। उसमें राम की अभिव्यक्ति, मानवीय दृष्टि से देख गया है। दूसरी और तीसरी जी की ‘कामाययी’ से उन्हें आकर्षण नहीं है। उन्हें ‘कामाययी’ में शांतिग्राम संगीताली उन्हें आती है। "कामाययी में छुड़क संगीतिक विज्ञान युग के विश्व महाकाव्य के संबंध का आयोजन है, पर दोनों के बदले का विशेष-परक नाटकीय उपस्थापना नहीं हो सकता है।" 83

छायावादी कवियों में से देवराज अनुसार जी की शब्दावली को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार शब्दार्थ के सार्थक संदेशन से उत्पन्न होनेवाला साइडयर अनुक्रम का आवश्यक संरचनाकर है, जो उनसे निरंतर सार्थकीय होने की मांग करता रहा है। फिर भी देवराज अनुसार जी की ग्रंथावली से प्रभावित नहीं होती क्योंकि "अनुसार का व्यक्तित्व जहां सार्थक संस्कृति की अपेक्षा में संवेदनीय और प्रामाण्यीय रहा है, वहीं युग की घटनाओं के अनुसार विश्वसी नहीं है।" 83

पुस्तक के दूसरे खण्ड में कुछ अन्य निबंध संकलित हैं। पहला निबंध आधार रामचरण शुक्ल पर पुस्तक अर्थित करता है। देवराज आधार शुक्ल के समीक्षक व्यक्तित्व को पूर्ण व्यक्ति करते हैं। उन्होंने शुक्ल जी के रचित द्वितीय अनुवर्तकों को भी अपना सथितिक रूप से देखने का प्रयास किया है।

'दूसरी परम्परा की खोज' में डॉ. नामकर सिंह की स्थापनाओं से देवराज सहमत न होते हुए अपने निबंध 'तीसरी परम्परा' में सिखाते हैं - "सब प्रकार के ज्ञान के प्रति साफ़, आदर और अभिव्यक्ति या अर्थ का मान हमारी प्रतिभात कथाओं, जिसमें अभिव्यक्ति का महामुखय संस्कृत भाषा है, अभिव्यक्ति और व्यक्ति विशेषात्य है, धर्म और आदर्शों की किसी भारतीय परम्परा में शाप ज्ञान को इतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना कि हमारे देश में। "भिन्न ज्ञान के मुक्ति नहीं होती" - वह उपलब्धि को मिलाता मानता है। भिन्न का उपदेश और बाली गीतों के अनुसार भी - ज्ञान के समान परिवर्तन करने वाली कई दूसरी चीजें नहीं हैं।" 84 इस प्रकार देवराज ने ज्ञानवादी परम्परा को भारतीय साहित्य की तीसरी परम्परा के रूप में स्थापित किया है। और यही काव्य में बहुत पहले महानता का संकल्प है।
'प्रगतिवादी समीक्षा - कुछ समस्याएँ' नामक निबंध में देवराज ने पूरी प्रगतिवादी समीक्षा को अपने विचार क्षेत्र का विषय नहीं बनाया है। मुक्तिवाद और नामदेव सिंह द्वारा प्रतिक्रियादिवस कुछ स्थापनाओं को ही उन्होंने अपने विचार का विषय बनाया है। प्रगतिवादी समीक्षकों ने मुक्तिवाद की उपेक्षा की थी इसे वे मनोवैज्ञानिक परिचय में देखते हैं और मानते हैं कि प्रगतिवादी कथा के रूप में मुक्तिवाद तथा दूसरे कथाओं का व्यक्तिगत अहोरा की कलात्मक श्रेणिया के आलोचना में दशकों लगे। विश्वनाथ कलात्मक सौदाहरण को लेकर यह संवाद न था कि मुक्तिवाद के अहोरा के प्रतिफल में खंड दिखा किया जाय। ऑ. नामदेव सिंह के विचारों से असहमत होते हुए देवराज मुक्तिवाद को नई कथा के रूप में स्थापित नहीं करते। मुक्तिवाद को उन्होंने और अहोरा की कथा के कवि नहीं मानते। नामदेव सिंह के रूप कही भी असहमत होते हुए श्री वे उन्हें एक समर्थ आलोचक मानते हैं।

"आलोचना काव्य" को ऑ. रामकुमार राय ने एक सैद्धांतिक अनुप्रयोग माना है। उनके अनुसार हिंदी के आलोचक क्षेत्र में ऑ. देवराज अपनी मान्यता देखते हैं रचना के रूप में सत्यान्त साबित करने वाली अनुभव पहचान के कारण निष्ठुर ही अत्यन्त महत्वपूर्ण है।" निश्चित यह कथा जा सकता है कि आलोचक हिंदी काव्य पर निर्देश, सांस्कृतिक-वृद्धि, दूरगामी विश्लेषण और मूल्यांकन करने वाली तथा रचनाकारों और काव्य भ्रमी पाठकों को नई दिशा देने वाली यह महत्वपूर्ण कृति है।

आलोचक के रूप में देवराज:

देवराज के सम्प्रति आलोचकों तथा साहित्य पर दृष्टि बदलते हुए यह कथा जा सकता है कि देवराज का आवश्यक तक का कुछ आलोचकात्मक सृजन एक प्रकार प्रभुद विकासात्मक उपक्रम है। उसके पास सैद्धांतिक आलोचना और रचनात्मक साहित्य की प्रकाश योग्यता है। उनकी दृष्टि में अस्ति से अलग हटकर व्यक्तिगत मान्यता जीवन के दर्शन का कोई अलंकार नहीं है। वे कलात्मक विचारों की तथा अनुभूति को पर्याय महत्व देते हैं और दृष्टि रखते हैं कि अस्ति का सांस्कृतिक दृष्टि हमारी सबसे महत्वपूर्ण संपत्ति एवं शक्ति है।

संबंधित संदर्भ वे कलात्मक के अथवा का आलोचक मानते हैं।

देवराज के साहित्य संबंधी विचार किए बाद विशेष जो प्रेम में नहीं बैठे हैं।
उन्होंने अपनी साहित्य सत्यान्त और साहित्यात्मक में अभिगम दृष्टि विकास से काम लिया है। वे लक्ष, दृष्टि और गुण चेतना की अवहेलना नहीं करते किन्तु गुणीता को एकान्तिक महत्व देने का विचार करते हैं।

आलोचना के स्तर, दांतिक और प्रथमक द्वारा सम्बन्ध इनके विचार देवराज को तत्त्वात्मकता आलोचक सिद्ध करते हैं। देवराज के अनुसार आलोचना सार्वभौम मानों पर निर्माता एक बौद्धिक तथ्यात्मक नहीं.

देवराज की दृष्टि में संस्कृति और मानवता लगभग परराज्यवादी है। स्मृति संस्कृति व्यवस्था के बिना साहित्य की सामाजिक सार्थकता निर्माण हो जाती है। सांस्कृतिक प्रयोग से देवराज को इतने लोग हैं कि उनकी दृष्टि में गुण के संरचना से तत्स्थ रहनेवाला व्यक्ति ने श्रेष्ठ साहित्यकार हो सकता है और न आलोचक।
देवराज यथासंभव रामदेश से भरित होकर नहीं हिलाते, यह किसी लेखक या वाद का असभीयता पुजारी या प्रशांत नहीं बन पाते। यह उनका दयांग्रंथ ही रहा है कि वे किसी भी क्षेत्र में प्रचलित मान्यताओं और मथिलका का सूक्ष्मतंत्र साथ नहीं दे पाते। यथार्थ उन्हें विषय का अर्थ है कि अपने लावली पीतियों उनके विचारों और निर्णयों को भी अधिक संबंधित तत्त्वस्था से और अधिक विकसित विदेशबुद्धि के आलोक में देख सकेंगे।

देवराज मुख्यतया कविता के समीक्षक हैं। कविता की समीक्षा, उनकी मान्यताएं नवीन दिशाओं की ओर संकेत करनेवाली हैं। देवराज की समीक्षा सच्चाई का साध से देती है। देवराज अपने निर्णयों को कहीं भावात्मक आंधेय में प्रतिफल नहीं करते, उदाहरण देकर, घर सबूत के साथ उस तथ्य का खुलासा अथवा स्पष्टीकरण करते हैं। इस कारण उनकी विश्वसनीयता पर प्रभावित लगाना कठिन हो जाता है।

देवराज जीवन-दृष्टि से संबंध बनाकर हैं, जिन्होंने जीवन की समग्रता को अपनी रचनाओं में समर्पित का प्रयत्न किया है। उन्होंने अपनी जीवन-दृष्टि को नया अपनी विचार-रचना से नैन्द्रातिक व्यापक है। जीवनदर्शन के बारे में उनका विचार काफी गहरा और व्यापक है।

देवराज का समग्र आलोचनात्मक साहित्य यह सिद्ध करता है कि देवराज ने कभी किसी भी-अनादी लक्षी की नहीं पीठा और न ही किसी समीक्षा दृष्टि को अपना आदर्श बनाया। उन्होंने काव्य चित्रन का एक स्थायी और मौलिक घराला दिया है। ‘छुआयाद’ का पत्तन नामक प्रेम हिंजने के साथ उनकी एक प्रकार साहित्य समीक्षक के रूप में होने लगी। ‘नयी कविता’ की समीक्षा के दौर में देवराज अपनी मान्यतावादी दृष्टि के कारण नयी कविता को स्वीकृति और मान्यता दिलाने में एक महत्वपूर्ण आलोचक के रूप में स्वीकार किये गये थे।
सन्दर्भ सूची

1. आधुनिक हिंदी काव्य, पृ. 123
2. हिंदी साहित्य कोश - (भाग-1) पृ. 107
3. छायावाद का उत्थान - पतन : पुनर्भूत्तापण, पृ. 11
4. छायावाद का उत्थान - पतन : पुनर्भूत्तापण, पृ. 65
5. छायावाद का उत्थान - पतन : पुनर्भूत्तापण, पृ. 67
6. छायावाद का उत्थान - पतन : पुनर्भूत्तापण, पृ. 58
7. देवराज : साहित्यविद और चित्रकार, सं. डॉ. विश्वमलयान उपाध्याय, पृ. 240
8. देवराज : साहित्यविद और चित्रकार, सं. डॉ. विश्वमलयान उपाध्याय, पृ. 240
9. साहित्य चित्रा - निवेदन, पृ. 1
10. साहित्य चित्रा, पृ. 2
11. साहित्य चित्रा, पृ.
12. साहित्य चित्रा, पृ. 47
13. साहित्य चित्रा, पृ. 31
14. डॉ. नितिकेश देवराज - वर्णन और साहित्य, सं. सुरेन्द्र शर्मा निवेदने पृ. 30
15. आधुनिक समीक्षा - निवेदन, पृ. 5
16. आधुनिक समीक्षा, पृ. 113
17. आधुनिक समीक्षा, पृ. 21
18. आधुनिक समीक्षा, पृ. 27
19. आधुनिक समीक्षा, पृ. 56
20. आधुनिक समीक्षा, पृ. 75
21. आधुनिक समीक्षा, पृ. 37
22. आधुनिक समीक्षा, पृ. 52
23. आधुनिक समीक्षा, पृ. 53
24. आधुनिक समीक्षा, पृ. 135
25. आधुनिक समीक्षा, पृ. 146
26. साहित्य और संस्कृति, पृ. 23
27. साहित्य और संस्कृति, पृ. 33
28. साहित्य और संस्कृति, पृ. 45
29. साहित्य और संस्कृति, पृ. 57
30. साहित्य और संस्कृति, पृ. 59
31. साहित्य और संस्कृति, पृ.
32. साहित्य और संस्कृति, पृ. 67
33. साहित्य और संस्कृति, पृ. 68
34. साहित्य और संस्कृति, पृ. 75
35. साहित्य और संस्कृति, पृ. 75
36. साहित्य और संस्कृति, पृ. 146
37. साहित्य और संस्कृति, पृ. 145
38. साहित्य और संस्कृति, पृ. 152
39. समसामयिक हिन्दी साहित्य : उपलब्धियाँ, सं.मन्मथनाथ गुरु पृ. 174
40. समसामयिक हिन्दी साहित्य : उपलब्धियाँ, सं.मन्मथनाथ गुरु पृ. 179
41. आधुनिक समीक्षा, पृ. 15
42. आधुनिक समीक्षा, पृ. 21
43. भारतीय संस्कृति, पृ. 216
44. भारतीय संस्कृति, पृ. 148
45. भारतीय संस्कृति, पृ. 192
46. भारतीय संस्कृति, पृ. 218
47. प्रतिक्रियाएँ, पृ. 7
48. प्रतिक्रियाएँ - विब्धति पृ. 1
49. प्रतिक्रियाएँ - विब्धति पृ. 10
50. प्रतिक्रियाएँ, पृ. 16
51. प्रतिक्रियाएँ, पृ. 24
52. प्रतिक्रियाएँ, पृ. 13
53. प्रतिक्रियाएँ, पृ. 53
54. प्रतिक्रियाएँ, पृ. 13
55. प्रतिक्रियाएँ, पृ. 5
56. प्रतिक्रियाएँ, पृ. 214
57. प्रतिक्रियाएँ, पृ. 128
58. प्रतिक्रियाएँ, पृ. 169
59. देवराव : साहित्यकार और धर्मावलोकन, सं. डॉ. विष्णुमयनाथ उपाध्याय, पृ. 235
60. प्रतिक्रियाएँ, पृ. 134-135
61. देवराव : साहित्यकार और धर्मावलोकन, सं. डॉ. विष्णुमयनाथ उपाध्याय, पृ. 248
62. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 3
63. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 5
64. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 7
65. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 19
66. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 27
67. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 52
68. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 61
69. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ.
70. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 73
71. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 85
72. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 92-93
73. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 97
74. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 97
75. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 118
76. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 119-120
77. देवराज : साहित्यकार और चित्रक, सं. डॉ. दिशमरनाथ उपाध्याय, पृ. 250
78. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, पृ. 148
79. उद्देश्य, पुरातात्त्वी जुलाई-दिसम्बर 1990, पृ. 37
80. उद्देश्य, पुरातात्वी जुलाई-दिसम्बर 1990, पृ. 38
81. उद्देश्य, पुरातात्वी जुलाई-दिसम्बर 1990, पृ. 39
82. उद्देश्य, पुरातात्वी जुलाई-दिसम्बर 1990, पृ. 40
83. उद्देश्य, पुरातात्वी जुलाई-दिसम्बर 1990, पृ. 40
84. उद्देश्य, पुरातात्वी जुलाई-दिसम्बर 1990, पृ. 42
85. पुरातात्वी, जुलाई-दिसम्बर 1990, पृ. 44